Vol. 6, No. 2
April - June, 2018

ISSN : 2321-5607

SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES

A Quarterly Refereed Journal

CITE THIS "VOLUME AS 6, NO. 2 SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES"

(April to June, 2018)

@Publishers

The "Socio-Economic Perspectives" Journal is published quarterly. Contributions to the Journal are invited in the form of articles, notes and case comments. Contributions to the Journal should be sent as an attachment to this mail id: **socioecopj2015 @gmail.com**

Akhil Bhartiya Samajik Vikas Evam Kalyan Samiti shall be the sole copyright owner of all the published material. Apart from fair dealing for the purposes of research, private study or criticism, none of the part of this Journal may be used in any form whatsoever without prior written permission from the publisher.

The editors, publishers and printers shall not be responsible, in any case, for the views/research papers/articles/book reviews given by the contributors. Contributors are completely responsible for any type of plagiarism or errors, if found.

Published by

Prof. A.N. Singh
Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
An Official publication of
Akhil Bhartiya Samajik Arthik Vikas Samiti
1/135, Viram Khand, Gomti Nagar,
Lucknow (U.P.)- 226010, India
e-mail: socioecopj2015 @gmail.com

Printed By

Shivam Printers
C-165, Nirala Nagar, Lucknow.

SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES
(A QUARTERLY REFEREED JOURNAL)

Editorial Board

Patron
Prof. R.P. Singh
Former Vice-Chancellor, University of Lucknow, Lucknow

Editor-in-Chief
Prof. A.N. Singh

Managing Editor
Dr. Vivek Kumar Singh

Executive Editor
Dr. Muhammad Nayim
Dr. Ashish Ranjan

Assistant Executive Editors
Dr. Archana Singh
Dr. Chet Narayan Patel
Dr. Leena Singh
Dr. Shikha Singh
Dr. Santosh Kumar

SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES
(A QUARTERLY REFEREED JOURNAL)

Article Review & Advisory Board

Prof. Balraj Chauhan
Former Vice Chancellor,
Ram Manohar Lohia,
National Law University, Lucknow

Prof. A.K. Singh
Vice-Chancellor,
Shri Ram Swaroop Memorial University,
Lucknow.

Prof. A.B. Singh
Department of Sociology &
Social Work,
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. R.B.S. Verma
Ex-Head,
Department of Social Work,
University of Lucknow

Prof. Sanjay Bhatt
Ex-Head, School of Social Work
Delhi University, Delhi

Prof. A.N. Singh
Ex-Dean, Faculty of Social Work,
M.G. Kashi Vidyapeeth, Varanasi

Prof D.K. Singh
Head,
Department of Social Work
University of Lucknow

Dr. Shailja Singh
Head,
Department of Sociology & Social Work
D.S.M.N.R. University, Lucknow

Prof. Ankur Saxena
Faculty of Social Work
The Maharaja Sayajirao
University, Baroda, Gujrat

Dr. Mridul Srivastava
Assistant Registrar,
R.M.L. National Law University,
Lucknow

Prof. Pratibha J. Mishra
Head, Department of Social Work
Guru Ghasidas Vishwavidyalaya,
Bilaspur

Dr. Durgesh Kumar Srivastava
Assistant Professor,
Department of AIH & Archaelogy,
University of Lucknow

Dr. P.N. Pathak
Administrative Officer,
University of Lucknow, Lucknow

SOCIO-ECONOMIC PERSPECTIVES

(A QUARTERLY REFEREED JOURNAL)

Volume 6, No. 2 (April to June, 2018)

Membership Fees

Membership	Individual	Institutional	Foreign
Annual	Rs. 1200/-	Rs. 2500/-	$100
Life Membership (Up to 10 Years)	Rs. 5000/-	Rs. 10,000/-	$200

* The draft or Cheque for member should be sent in favour of:

The Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
1/135, Viram Khand, Gomti Nagar,
Lucknow (U.P.)- 226010

** The membership fees can also be deposited directly or through NEFT favour of :

The Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
Bank: Indian Overseas Bank
Branch: BSIP (1873), University Road, Lucknow- 226007
SB Account Number: 187301000003252
IFSC: IOBA0001873
MICR: 226020021

Editorial correspondence should be addressed to:

Prof. A.N. Singh
Editor-in-Chief
Socio-Economic Perspectives Journal
1/135, Viram Khand, Gomti Nagar,
Lucknow (U.P.)- 226010, India
e-mail: socioecopj2015 @gmail.com

CONTENT

S. No.	Title of the Paper	Author	Page No.
1.	भारत में कुपोषण की स्थिति एवं कारण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डा0 मुहम्मद नईम डा0 रूपेश कुमार सिंह	1
2.	आधी आबादी से सरोकार के दृष्टिगत गांधी और अम्बेडकर पर एक दृष्टि	डा0 संजय अग्रवाल	23
3.	कलिकथा वाया बाईपास : मूल संवेदना	डा0 कृष्णकान्त चन्द्रा	36
4.	नई कहानी आन्दोलन और उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि	मनोज कुमार शुक्ल	46
5.	अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र के साहित्य में राष्ट्रीय भावना	डा0 अम्बरीष कुमार शास्त्री	51
6.	शासकीय सेवा से सेवानिवृत्त वृद्धजनों की मनोसामाजिक समस्यायें तथा वृद्धों के सरंक्षण हेतु किए गए शासकीय प्रयास	अंजना सिंह पाल डा० सरिता कुशवाहा डा0 मुहम्मद नईम	56
7.	Sustainable Development : Need of the Hour	Dr. Anil Kumar Srivastava	88
8.	Of Religious Places	Dr. Ram Shankar Yadav	99

भारत में कुपोषण की स्थिति एवं कारण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मुहम्मद नईम*, डॉ. रुपेश कुमार सिंह**

भारत में कुपोषण एक अत्यंत जटिल मुद्दा है। कुपोषण वह अवस्था है, जिसमें पौष्टिक पदार्थ और भोजन, अव्यवस्थित रूप से लेने के कारण शरीर को पूरा पोषण नहीं मिल पाता है तथा जिसके कारण स्वास्थ्य के लिए गंभीर स्थिति पैदा हो जाती है। कुपोषण तब भी होता है, जब किसी व्यक्ति के आहार में पोषक तत्व की सही मात्रा नहीं होती है। हम स्वस्थ रहने के लिए भोजन के द्वारा ऊर्जा और पोषक तत्व प्राप्त करते हैं, किन्तु भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन और खनिजों सहित पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिलते हैं तो हम कुपोषण का शिकार हो जाते हैं।

विगत दो दशकों से अधिक समय में भारत में कुल खाद्यान्न उत्पादन 198 मिलियन टन से बढ़कर 269 मिलियन टन हो गया है, परंतु खाद्य उत्पादन में वृद्धि के बावजूद भारत में कुपोषण की दर बहुत अधिक है। कुपोषण का सबसे ज्यादा असर गर्भवती माँ और उसके होने वाले बच्चे पर दिखाई पड़ता है। राष्ट्रीय फेमिली हेल्थ सर्वे (सन् 2015–16) के अनुसार 15 से 49 आयु वर्ग की लगभग 24 प्रतिशत वयस्क महिलायें कम वजन वाली हैं जबकि 16 प्रतिशत वयस्क महिलायें अधिक वजन वाली हैं। 5 वर्ष से कम उम्र के लगभग 36 प्रतिशत बच्चे छोटे कद वाले या बौने हैं तथा लगभग 39.5 प्रतिशत बच्चे कम वजन के हैं। साथ ही राष्ट्रीय फेमिली हेल्थ सर्वे 4 के अनुसार 19 वर्ष की आयु से पहले लगभग 4.9 प्रतिशत महिलायें शीघ्र गर्भधारण कर लेती हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि 19 वर्ष से कम उम्र में गर्भावस्था प्रायः अविकसित बच्चों को जन्म देती है। ऐसे में ज्यादातर बच्चे या तो समय से पहले जन्म लेते हैं या कुपोषित होते हैं।

* *सहायक आचार्य, समाज कार्य विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उत्तर प्रदेश)*

** *सहायक आचार्य, (समाज कार्य) डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)*

भारत की तकरीबन एक तिहाई जनसंख्या कुपोषण का सामना कर रही है, वहीं लगभग 40 प्रतिशत बच्चों को पर्याप्त मात्रा में भोजन भी प्राप्त नहीं हो पाता। भारत सरकार ने इस समस्या को दूर करने के लिए अब तक कई प्रयास किये हैं, लेकिन तेजी से बढ़ती जनसंख्या और शहरी क्षेत्रों में रहने वाली आबादी के बढ़ते अनुपात के कारण निरंतर समस्यायें पैदा हो रही हैं। वर्तमान शोध पत्र में महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण की स्थिति एवं कारण ज्ञात करने का प्रयास किया गया है, लेकिन उक्त स्थिति का अध्ययन करने से पूर्व विभिन्न विद्वानों, समाज वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं द्वारा कुपोषण के विभिन्न आयामों तथा महिलाओं, बच्चों एवं किशोरों पर कुपोषण के प्रभाव आदि का अध्ययन किया है, जिनकी समीक्षा करना आवश्यक है।

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा

भारतीय महिलाओं एवं बच्चों के कुपोषण की स्थिति से सम्बन्धित समय –समय पर विभिन्न शोध अध्ययन सम्पादित किये गये हैं, जो निम्नवत् हैं:–

भंडारी, लवेश एवं जैदी, लहर (2004) ने कुपोषण के लागत की समीक्षा का अध्ययन किया है। अध्ययन में उन्होंने पाया है कि कुपोषण तथा अन्य पोषक तत्व संबंधी समस्या से निपटने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश किया गया है लेकिन इसका लाभ सभी लोगों को प्राप्त नहीं हो रहा है इन लागत का मूल्यांकन करने के लिए कठोर नियम बनाने की आवश्यकता है जिसका लाभ सही तरीके से सबको मिल सके।

शेखर, मीरा एवं गुप्ता, मोनिका दास (2005) ने भारत के कुपोषित बच्चें व महिलाओं के सुधार और कार्यवाही का अध्ययन किया, जिसमें उन्होंने आई.सी.डी.एस. के कार्यक्रमों के प्रभावों की जाँच की हैं, जिसमें उन्होंने पाया कि आई.सी.डी.एस. की जो कार्य प्रणाली है और नीतियाँ हैं, वो बहुत धीमी गति से कार्य कर रही हैं, अगर आई. सी.डी.एस. को अपने कार्यक्रम को सफल बनाना हैं, तो नीतियों को अच्छे से क्रियान्वयन की आवश्यकता हैं।

टैरोजी, एल्सैन्डों एवं महाजन, अपराजिता (2006) ने भारत में बाल कुपोषण का अध्ययन किया जिसमें देखा कि बच्चों में कुपोषण का कारण लिंग भेद एवं भौगोलिक क्षेत्रों के कारणों से होता हैं और साथ ही अन्य प्रकार की समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं, तथा पाया कि शहरी क्षेत्रों में लिंग भेद के कारण होने वाली स्वास्थ्यगत समस्याएं कम हो गई है तथा भारत की आर्थिक स्थिति में भी परिवर्तन दिखाई दे रहा हैं।

मन्गेशकर, एम. जैमर्थ (2012) ने भारत में पोषण की स्थितिः सामाजिक–आर्थिक स्थिति विषय पर अध्ययन किया है जिसमें उन्होंने भारत के प्रमुख राज्यों में बाल कुपोषण की सामाजिक–आर्थिक स्थिति की असमानता को ज्ञात किया एवं बच्चों के पोषण की स्थिति एवं पोषक तत्वों से संबंधित तथ्यों को एकत्रित किया और उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि कम आय वर्ग वाले बच्चों की तुलना में उच्च आय वर्ग के बच्चों में पोषण की स्थिति अच्छी है।

पीकोट, जे.(2012) ने दी इफेक्टिवनेश ऑफ इन्टरवेन्शन इन यंग चिल्ड्रन : ए सिस्टमैटिक रिव्यू का अध्ययन किया एवं उन्होंने यह जानने का प्रयास किया कि 5 साल के बच्चों के उपचार को प्रभावित करने वाले कारक क्या हैं? तथा अध्ययन में पाया कि 5 साल के बच्चों में आनेवाली पोषक तत्व संबंधी स्वास्थ्य की समस्या से निपटने के लिए उच्च प्रबंधन की आवश्यकता है तथा अन्य औपचारिक दवाओं का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए।

दास, सुबल एवं बोस, कौशिक (2015) ने भारत में व्यस्क आदिवासी कुपोषण : एक मानवशास्त्री और सामाजिक जनसांख्यिकीय समीक्षा के अध्ययन में पाया कि जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ता हैं, जनजातियों के पोषण स्तर को बढ़ाने की आवश्यकता हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ेगा।

अग्रवाल, मोनिका, गुप्ता, कीर्ति एवं चौधरी, श्रेया (2016) ने मल्लपुरम् के आंगनबाड़ी केन्द्रों में कुपोषण के विश्लेषण में पाया कि आंगनबाड़ी केन्द्रों में कुपोषण की दर लगातार बढ़ रही हैं, और इसका कारण बच्चों के परिवार

की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में लगातार होने वाली गिरावट हैं, आंगनबाड़ी केन्द्रों में कार्यों की लापरवाही भी सामने आई हैं, और आंगनबाड़ी की विश्वसनीयता पर भी सवाल उठा हैं, सरकार को इसके लिए प्रभावी प्रयास की जरूरत हैं।

उपर्युक्त शोध अध्ययनों की समीक्षा से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में महिलाओं एवं बच्चों की पोषण की स्थिति काफी चिंताजनक है और ग्रामीण तथा जन–जातीय क्षेत्रों की महिलाओं में कुपोषण की दर नगरीय क्षेत्रों की तुलना में अधिक है, जिससे उक्त क्षेत्रों की महिलाएं विभिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रसित हो जाती है और जिससे इनके स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए वर्तमान समय में यह ज्ञात करना आवश्यक है कि महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण की वर्तमान स्थिति कैसी है एवं कुपोषण होने के प्रमुख कारण/कारक क्या हैं, जिससे कुपोषण की समस्या की दर को कम करने की दिशा में सरकार एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा सकारात्मक कदम उठाये जा सके।

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारत में महिलाओं एवं बच्चों के कुपोषण की स्थिति का विश्लेषण करते हुए कुपोषण के कारणों को प्रकाश में लाना है। साथ ही भारतीय महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण की दर को कम करने एवं इसके समाधान हेतु सरकार एवं अन्य प्रयासों की चर्चा करना है।

उक्त शोध पत्र विश्लेषणात्मक सह–निदानात्मक प्रकृति तथा द्वितीय स्रोतों से प्राप्त गुणात्मक एवं गणनात्मक आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित है। प्रस्तुत शोध पत्र को सर्वप्रथम तीन भागों में विभाजित किया गया है– भाग–प्रथम में कुपोषण की अवधारणा, स्थिति, लक्षण, प्रभाव एवं भारत में वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया गया है। भाग–द्वितीय में कुपोषण के कारणों के कारणों की चर्चा की गयी है तथा तत्पश्चात् अन्तिम भाग (भाग–तृतीय) में कुपोषण की समस्या के समाधान के लिए सरकारी एवं अन्य प्रयासों पर प्रकाश डाला गया है।

भाग–प्रथम

कुपोषण

कुपोषण, पोषण की वह स्थिति है जिसके कारण व्यक्ति के स्वास्थ्य में गिरावट आने लगती हैं। यह एक या एक से अधिक तत्वों की कमी या अधिकता या असंतुलन के कारण होती हैं, जिसके कारण शरीर रोगग्रस्त हो जाता हैं। अधिकांश भारतीयों के भोजन में चाहे वह गरीब हो या अमीर, वृध्द् हो या युवा, स्त्री हो या पुरूष, गर्भवती माता हो या धात्री, किसी न किसी पौष्टिक तत्वों की अधिकता या कमी रहती हैं। विशेषकर गरीब किसान, मजदूर तथा निम्न आर्थिक वर्ग के लोगों की भोजन गुणात्मक तथा परिणात्मक दोनों ही दृष्टि से अपर्याप्त होता हैं। वारथिन्गटन–राबर्ट बी. (1989 : 516–545) ने माना है कि कुपोषण सबसे ज्यादा बच्चों में गर्भवती महिला द्वारा अपर्याप्त आहार व सेवन के द्वारा होता है तथा स्तनपान करने वाले बच्चों में अपर्याप्त, असंतुलित व असुरक्षित आहार के द्वारा होता हैं।

कुपोषण तब होता हैं, जब शरीर को पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिलतें, इसके कारणों में आहार की कमी, पाचन की अवस्थाएं या अन्य रोग शामिल हैं, कुपोषण शरीर में पर्याप्त पोषक तत्वों की कमी से अधिक होता हैं, सामान्यतः भारत में हर साल कुपोषण के 10 लाख से ज्यादा मामले दिखाई देते हैं, कुपोषण का स्तर मध्यम अवधि में रहने से महिने भर में ठीक हो जाता हैं, आमतौर पर इसका उपचार स्वयं किया जाता हैं, इसका पता भी लक्षणों को देखकर स्वयं लगाया जा सकता हैं।

कुपोषण की स्थितियाँ :

कुपोषण की स्थिति मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं

1. अति पोषण 2. अल्प पोषण

1. अति पोषण

जब व्यक्ति के आहार में कुछ पौष्टिक तत्वों की अधिकता हो जाती है तथा यह अधिकता लम्बे समय तक चलती रहती है तो अति पोषण

कहलाती है, इसके कारण कई रोग हो जाते हैं, जैसे–मोटापा, हृदय रोग,उच्च रक्त चाप, हाइपर विटोमनोसिस 'ए' तथा 'डी' आदि।

2. अल्प पोषण

जब व्यक्ति के भोजन में किसी न किसी पौष्टिक तत्वों की निरंतर कमी बनी रहती है तो वैसा पोषण अल्प पोषण कहलाता है। इसके कारण कई बीमारियाँ हो जाती हैं, जैसे मैरास्मस, क्वाशियोरकार, अधंता, स्कर्वी, बेरी–बेरी, रक्त–अल्पता आदि।

कुपोषण की स्थितियां

अति पोषण	अल्प पोषण
अतिभार	स्कर्वी
मोटापा	बेरी–बेरी
हृदय रोग	गॉयटर
विटामिन ए की अधिकता	रक्त अल्पता
यकृत रोग	रिकेट्स
गुर्दे का रोग	मैरास्मस

कुपोषण के लक्षण

लक्षण वह होता हैं, जो मरीज स्वयं महसूस करता हैं, और उनके बारे मे बताता हैं, संकेत वह होते हैं, जिनका डॉक्टर पता लगाते हैं। कुपोषण का प्रभाव न केवल व्यक्ति के शारीरिक विकास पर पड़ता हैं, बल्कि इससे मानसिक, सामाजिक तथा बौध्दिक विकास भी प्रभावित होता है। उसमें सीखने तथा याद करने की क्षमता का भी ह्रास होता हैं। बालक का मन पढ़ने–लिखने, खेलने–कूदने में नहीं लगता है। वह चिढ़चिढ़ा, क्रोधी, अशान्त एवं बेचैन रहने लगता हैं।

कुपोषण का प्रभाव :

- शरीर को आवश्यक संतुलित आहार लम्बे समय तक नहीं मिलने से बच्चों और महिलाओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, जिससे वे आसानी से कई तरह की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।
- बच्चों और स्त्रियों के अधिकांश रोगों की जड़ कुपोषण ही है। स्त्रियों में रक्ताल्पता, घेंघा रोग अथवा बच्चों में सूखा रोग या रतौंधी और यहाँ तक कि अंधापन भी कुपोषण का ही दुष्परिणाम है।
- कुपोषण बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करता है। यह जन्म के बाद या उससे भी पहले शुरू हो जाता है और 6 महीने से 3 वर्ष की आयु वाले बच्चों में तीव्रता से बढ़ता है।
- सबसे भयंकर परिणाम इसके द्वारा होने वाले आर्थिक नुकसान है। कुपोषण के कारण मानव उत्पादकता 10—15 प्रतिशत तक कम हो जाती है जो सकल घरेलू उत्पाद को 5—10 प्रतिशत तक कम कर सकता है।

भारत में कुपोषण की स्थिति :

1. अपनी एक रिपोर्ट में विश्व बैंक ने कहा था कि वर्ष 1990 से वर्ष 2017 के बीच भारत ने गरीबी से लड़ने के लिए अतुलनीय कार्य किया है और इससे देश में गरीबी दर में काफी गिरावट दर्ज की गई है। इस अवधि में देश की गरीबी दर तकरीबन आधी रह गई है।
2. वर्ष 2006 से वर्ष 2016 के दौरान भारत सबसे तेजी से गरीबी हटाने का कार्य किया है और इन वर्षों में लगभग 27 करोड़ लोग गरीबी रेखा के ऊपर आए हैं।
3. वर्ष 2017 की वैश्विक पोषण रिपोर्ट बताती है कि भारत में 15 से 49 वर्ष की आयु वर्ग की 51 प्रतिशत महिलायें एनीमिया से पीड़त हैं।
4. गरीबी सूचकांक रिपोर्ट 2017 के अनुसार देश के कुल गरीबों का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा देश के मात्र चार राज्यों झारखण्ड, बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में है। यद्यपि देश में गरीबी दर में गिरावट

आ रही है, परन्तु कुपोषण और भूख की समस्या आज भी देश में विद्यमान है।

5. द स्टेट्स ऑफ द वर्ल्डस चिल्ड्रन रिपोर्ट के अनुसार, विश्व में 5 वर्ष से कम उम्र के प्रत्येक बच्चों में से एक बच्चा कुपोषण अथवा अल्प वजन की समस्या से ग्रस्त है। पूरे विश्व में लगभग 200 मिलियन तथा भारत में प्रत्येक दूसरा बच्चा कुपोषण के किसी न किसी रूप से ग्रस्त है। रिपोर्ट में यह भी सामने आया था कि वर्ष 2017 में भारत में कुपोषण के कारण 5 वर्ष से कम उम्र लगभग 8.8 लाख बच्चों की मृत्यु हुई जो कि नाइजीरिया (8.6), पाकिस्तान (4.09 लाख) और कांगो गणराज्य (2.96 लाख) से भी अधिक है।
6. वैश्विक भूखमरी सूचकांक रिपोर्ट के अनुसार भी भारत में कुपोषण के कारण उत्पन्न स्थितियां चिन्ताजनक हैं।

भारत में करीब 50 फीसदी बच्चे कुपोषण का शिकार हैं, जिसका परिणाम न केवल उनके बचपन पर पड़ रहा है बल्कि उनका भविष्य भी अंधकारमय हो रहा है। हाल ही में पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया, आईसीएमआर और नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ न्यूट्रेशन द्वारा भारत के सभी राज्यों में कुपोषण की स्थिति पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसके अनुसार वर्ष 2017 में देश में कम वजन वाले बच्चों के जन्म की दर 21.4 फीसदी रही। जबकि जिन बच्चों का विकास नहीं हो रहा है, उनकी संख्या 39.3 फीसदी, जल्दी थक जाने वाले बच्चों की संख्या 15.7 फीसदी, कम वजनी बच्चों की संख्या 32.7 फीसदी, अनीमिया पीड़ित बच्चों की संख्या 59.7 फीसदी और अपनी आयु से अधिक वजनी बच्चों की संख्या 11.5 फीसदी पाई गई थी। हालांकि पांच साल से कम आयु के बच्चों की मौत के कुल मामलों में 1990 के मुकाबले 2017 में कमी आई है। 1990 में यह दर 2336 प्रति एक लाख थी, जो 2017 में 801 पर पहुंच गई है, लेकिन कुपोषण से होने वाली मौतों के मामले में मामूली सा अंतर आया है। 1990 में यह दर 70.4 फीसदी थी, 2017 में जो 68.2 फीसदी ही पहुंच पाई। यह एक प्रमुख चिंता का विषय है, क्योंकि इससे पता चलता है कि कुपोषण का

खतरा कम नहीं हुआ है। स्पष्ट है कि हम इस समस्या को जितना समझ रहे है, यह उससे कई गुना बड़ी है। आज हमारी वरीयता सिर्फ बच्चों का पेट भरना न होकर उन्हें एक संतुलित और पोषित आहार देने की होनी चाहिए। जो न केवल राष्ट्र की जिम्मेदारी है, बल्कि परिवार को भी इसमें अपनी भूमिका समझनी होगी।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स के अनुसार, भारत में 2010 के बाद से लगातार बच्चों में कमजोरी (वेस्टिंग) बढ़ रही है। 2010 में पांच सल तक के बच्चों में कमजोरी की दर 16.5 प्रतिशत थी, लेकिन अब 2017 में यह बढ़ कर 20.8 फीसदी हो गई है।

यूनिसेफ के मुताबिक, बच्चों का कम वजन के साथ कद में भी कमी आने को वेस्टिंग की श्रेणी में रखा गया है। यूनिसेफ का कहना है कि ऐसे बच्चों की मृत्यु होने की आशंका अधिक होती है। बच्चों के कमजोर होने का मुख्य कारण भोजन की कमी और बीमारियां है। रिपोर्ट में कहा गया है कि जिन देशों में वेस्टिंग रेट 10 प्रतिशत से अधिक है, वे बेहद गंभीर स्थिति है और उस पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है। ग्लोबल हंगर इंडेक्स के अनुसार, 6 से 23 माह के 90.4 फीसदी बच्चों को जितने खाने की जरूरत है, उतना नहीं मिल पा रहा है।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स, दुनिया भर में भूख के स्तर और असंतुलन की गणना करता है। इस सूचकांक के लिए चार संकेतकों पर विचार किया जाता है, जिनमें अल्पपोषण, बच्चों में कमजोरी, बाल मृत्यु दर और बच्चों का विकास रुकना शामिल है। ग्लोबल हंगर इंडेक्स में भारत का स्थान 102 पर है, जबकि इसमें केवल 117 देशों को ही शामिल किया गया है। इस रिपोर्ट में भारत में भूख का स्तर 30.3 अंक है, जो काफी गंभीर है। यहां तक कि उत्तर कोरिया, नाइजीरिया, कैमरून जैसे देश भारत से अच्छी स्थिति में हैं। पड़ोसी देश जैसे श्रीलंका (66 वां), नेपाल (73 वां), पाकिस्तान (94 वां), बांग्लादेश (88 वां) स्थान पर हैं और भारत से आगे हैं। ग्लोबल हंगर इंडेक्स का कहना है कि भारत की बड़ी आबादी के कारण इसके भूख संकेतक का क्षेत्र के कुल संकेतकों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इंडेक्स में

भारत में उच्च स्टंटिंग (बच्चों का विकास रुकना) दर के बारे में भी चिंता जताई गई है। हालांकि पिछले सालों के मुकाबले इसमें सुधार हुआ है। रिपोर्ट के मुताबिक 2010 में, भारत में पांच वर्ष से कम आयु वर्ग के बच्चों में स्टंटिंग की दर 42 प्रतिशत थी, जो 2017 में 37.9 प्रतिशत है। रिपोर्ट में कहा गया है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य महत्व के मामले में दर भी बहुत अधिक है। रिपोर्ट में खुले में शौच की प्रथा पर भी टिप्पणी की गई है। कहा गया है कि हालांकि भारत के प्रधानमंत्री ने भारत को खुले में शौच मुक्त बनाने के लिए 2014 में स्वच्छ भारत अभियान शुरू किया था, लेकिन अभी भी भारत में खुले में शौच किया जा रहा है, जो लोगों के स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है। खासकर, इससे बच्चों का विकास प्रभावित होता है।

भाग–द्वितीय

कुपोषण के कारण

वर्तमान समय में कुपोषण की समस्या पूरे विश्व में सबसे बड़ी समस्या के रूप में हैं। सम्पूर्ण विश्व में सबसे ज्यादा कुपोषित भारत में हैं, उसमें भी महिलाओं व बच्चों में यह समस्या अधिक हैं। भारत की अधिकांश गरीब जनता को प्रतिदिन सुबह–शाम भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं होता हैं। जिससे वे कुपोषित हो जाते हैं। गरीब परिवारों के बालकों को भरपेट अनाज भी नहीं मिलता, जिसके कारण उनके शरीर में ऊर्जा उत्पादक भोज्य तत्वों की भी कमी हो जाती हैं तथा वे निर्बल, कमजोर, निशक्त एवं थके–थके दिखाई देते हैं। गर्भवती तथा धात्री माता की दशा भी कम दयनीय है। यूनिसेफ (2008) का कहना है कि आज विश्व का प्रमुख मुददा कुपोषण है जिसका सामना आज पूरी दुनिया को करना पड़ रहा है, यह समस्या विकासशील देशों में विशेषकर बच्चों में दिखाई देती हैं। दुनिया में कुल कुपोषित लोगों की आधे से अधिक आबादी भारत में हैं, अर्थात 47 प्रतिशत भारत में सबसे अधिक कुपोषित व्यक्ति हैं, जो एक सर्वे द्वारा विदित हैं, जिसमें महिलाओं और बच्चों की संख्या अधिक हैं, भारत में सबसे अधिक कम वजनी बच्चें हैं।

यूनिसेफ (1994) के रिपोर्ट के अनुसार कुपोषण का मुख्य कारण शहरी गरीबी, भीड़भाड़ और घटिया आवास के साथ–साथ गंदी बस्तियों का होना हैं। इन क्षेत्रों में अधिक बाल मृत्यु–दर व कुपोषण तथा अन्य संक्रामक बीमारियाँ अधिक दिखलायी पड़ती हैं। ओसन्ग (1992) ने कुपोषण को बच्चों के मानवाधिकार का उल्लंघन माना हैं इन्होंने इसे शारीरिक और भावानात्मक पीड़ा का एक प्रमुख कारण भी बताया हैं।

देश में महिलाओं और बच्चों में बढ़ रहे कुपोषण के मामले में छत्तीसगढ़ दूसरे स्थान पर हैं, विगत एक साल में आई साढ़े तीन फीसदी कमी के बावजूद यह आँकड़ा चौंकाने वाला हैं, कि वर्तमान में राज्य में 7.67 लाख से ज्यादा महिलाएं एवं बच्चें कुपोषण के शिकार हैं।

कृषि क्षेत्र में उत्पादकता की कमी होने से आय में कमी होती हैं, जिससे व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति में कमी होती हैं, जिससे उनके खानपान, रहन सहन में गिरावट होती हैं जिससे उनकी सामाजिक स्थिति प्रभावित होती हैं, खानपान में गिरावट आने से उनके स्वास्थ्य में गिरावट आता हैं, जिससे कुपोषण को बढ़ावा मिलता हैं। कुपोषण हर क्षेत्र के लोगों को प्रभावित करता हैं, दुनिया भर में करीब 1.9 बिलीयन एडल्ट कम वजन वाले होते हैं, जबकि 462 मिलियन एडल्ट अधिक वजन वाले हैं, अनुमानित 5 वर्ष से कम आयु के 41 लाख बच्चों से अधिक छोटे कद वाले और 50 मिलियन कमजोर बच्चे हैं, आयरन की कमी के कारण दुनिया भर में 528 मिलियन या 29 प्रतिशत महिलाएं एनीमिया से प्रभावित हैं।

कुपोषण के मुख्य कारण निम्नलिखित है :–

1. गरीबी :

आबादी के कुछ समूहों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति निम्न होने के कारण उनके आहार की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में कमी होती हैं, जो महिलाएं कुपोषण से पीड़ित हैं, उनके शिशुओं की स्वस्थ होने की संभावना नहीं होती हैं, गरीबी की वजह से हर रोज भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा आदि जैसे आवश्यक तत्वों की कमी होती है, इसलिए बच्चों में

कुपोषण होना स्वाभाविक हैं। ''भारत एक विशाल परन्तु निर्धन देश है। यहाँ की अधिकांश जनता गरीब है, जिन्हें दो वक्त का भरपेट भोजन तक प्राप्त नहीं होता है, अतः उनके आहार में पर्याप्त मात्रा में कैलोरी तक उपलब्ध नहीं होती हैं, विशेषकर निम्न आर्थिक वर्ग के लोग, मजदूर एवं निर्धन किसान तथा उनके बच्चे कुपोषण के अधिक शिकार होते है।''

गरीबों के पास इतने पैसे नहीं होते है कि वे उत्तम गुणवत्ता वाले भोज्य पदार्थ को खरीदकर खा सकें अथवा अपने परिवार के सदस्यों को खिला सके, यदि वे क्रय भी करते है तो सस्ते दामों वाले निम्न गुणवत्ता वाले भोज्य पदार्थ, जिनमें कई बार मिलावट भी होती है। ऐसे निम्न कोटि के भोज्य पदार्थों में कई पोषक तत्वों की कमी होती है, यदि लम्बे समय तक उन्हें सभी पौष्टिक तत्वों से भरपूर भोजन नहीं मिलता है तो वे कुपोषण के शिकार हो जाते है। इस प्रकार देश की महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण का एक प्रमुख कारण गरीबी है।

2. अज्ञानता

गरीबी के साथ–साथ अज्ञानता भी कुपोषण का एक बहुत बड़ा कारण है। यह जरूरी नहीं कि महँगे फलों, सब्जियों, सूखे मेवों में ही सभी पौष्टिक तत्व विद्यमान रहते हैं। सस्ते भोज्य पदार्थ, सस्ती सब्जियाँ एवं सस्ते फल भी पौष्टिक तत्वों से भरपूर होते हैं, जैसे–पालक, बथुआ, चना, सरसों का साग, सहजन के पत्ते, गाजर आदि, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि उन खाद्य पदार्थों के बारे में लोगों को जानकारी होनी चाहिए।

कई भोज्य पदार्थों का परित्याग इसलिए किया जाता है कि उनका स्वरूप, रंग, आकृति, रचना आदि उनके विचारों तथा मनोभावों से नहीं मिलती–जुलती हैं, जैसे–चुकुन्दर का लाल रंग(रक्त जैसा), सोयाबीन का स्वाद मांस जैसा, कटहल का स्वाद मांस जैसा, पपीते को गर्मी देने वाला भोज्य पदार्थ समझना, पपीता गर्भवती माता के लिए हानिकारक हैं, तथा गर्भपात हो सकता है। 6 माह के शिशु को ऊपरी आहार देने से पेट निकल जाता हैं आदि। ''यदि गरीबी के साथ अज्ञानता भी मिल जाता है तो स्थिति

गंभीर हो जाती है तथा कुपोषण के भयावह परिणाम देखने को मिलते है। अज्ञानता के कारण गरीब माताएँ अपने शिशु को भरपूर भोजन भी नहीं खिला पाती हैं, जो कि उनके शिशु के उत्तम स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी होते है।''

3. शिक्षा का अभाव

अशिक्षा ही सभी बुराईंयों की जड़ है। अशिक्षित व्यक्तियों में सोचनें–समझने, विचार करने, कल्पना करने का क्षमता की कमी होती हैं। अतः वे ये नहीं सोच पाते कि किन–किन भोज्य तत्वों में कौन–कौन से पौष्टिक तत्व विद्यमान है तथा उनकी पूर्ति किन साधनों से तथा कहाँ से की जायेगी? अतः वे सही भोजन का चुनाव नहीं कर पाते हैं। कई बार भोज्य पदार्थों की उपलब्धता तथा परिवार के उन भोज्य पदार्थों को खरीदने की क्षमता के बावजूद भी अशिक्षा के कारण उनका उपयोग भोजन में नहीं होता हैं। परिणामतः कुपोषण की सम्भावनाएँ प्रबल हो जाती है।

4. बेरोजगारी

बेरोजगारी भी कुपोषण का एक बड़ा कारण है। जनसंख्या वृद्धि, स्वयं का धंधा न करने की चाह,सरकारी सेवाओं में नौकरी पाने का आभाव आदि कारणों से बेरोजगार युवक नौकरी की तलाश में दर–दर की ठोकरें खाते हैं उन्हे नौकरी नहीं मिलती, अतः आय नहीं होती है, परिणामतः गरीबी बढ़ती है। गरीबी के कारण कुपोषण बढ़ता है।

5. जनसंख्या वृद्धि

यदि गहन विचार किया जाए तो पता चलता है कि कुपोषण की मुख्य जड़ जनसंख्या की दर में वृद्धि का होना है, जिस अनुपात में भारत की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उस अनुपात में भोज्य तत्वों का उत्पादन नहीं हो रहा हैं, परिणामतः प्रति व्यक्ति भोज्य पदार्थों का उपभोग कम होता हैं, क्योकि कम उत्पादन के कारण ये महँगे होते हैं जिसका हर कोई विशेषकर निर्धन जनता खरीदकर नहीं खा सकती है। भारत में मातृ–शिशु

मृत्यु दर भी अधिक हैं, माताएँ अशिक्षित है, वे प्रजनन पर रोक नहीं लगाती है। उन्हें जनसंख्या नियत्रंण की विधियों में भी कोई विशेष जानकारी नहीं होती है।

6. भोजन की अपर्याप्त आपूर्ति

जन समुदाय में भोजन की अपर्याप्त आपूर्ति से भी कुपोषण बढ़ता है। उत्पादन कम होता है, जिससे भोजन की कमी होती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप कुपोषण की समस्या उत्पन्न होती है। गरीब विकासशील देशों में भोजन की कमी और भोजन का असमान वितरण मुख्य रूप से कुपोषण को जन्म देती हैं।

7. भोज्य पदार्थों में मिलावट

कुपोषण का कारण न केवल भोजन का उत्पादन, वितरण, संग्रहण या उपलब्धता ही है बल्कि भोज्य पदार्थों में मिलावट से उनकी गुणवत्ता एवं पौष्टिकता कम हो जाती है। कभी–कभी वे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही हानिकारक होते हैं। जैसे दूध में पानी मिला देने से दूध की पौष्टिकता एवं गुणवत्ता में व्यापक कमी आ जाती है। हल्दी में कृत्रिम रंग मिला देने से ये स्वास्थ्य के लिए हानिकारक एवं अहितकर हो जाती है। विक्रेता या व्यापारी वर्ग अधिक लाभ कमाने के लिए भोज्य पदार्थों में मिलावट करते हैं तथा जनता के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करते है। अभी हाल ही के वर्षों में दिल्ली में सरसों के तेल के मिलावट से सैकड़ों लोगों की जानें गई थी, तथा हजारों लोंग ड्रॅाप्सी रोग के शिकार हो गये थे।

8. शहरीकरण

नौकरी, श्रम व रोजगार की तलाश में अधिकाशंतः ग्रामीण युवक–युवतियाँ गाँव छोड़कर शहर में आकर बस जाते हैं, जिसके कारण शहर की आबादी बढ़ रही है। परन्तु जिस अनुपात में शहर की आबादी में बढ़ोतरी होती हैं उस अनुपात में भोज्य तत्वों की वृद्धि नहीं हो पाती हैं, अतः बाजार में भोज्य पदार्थ ऊँचे दामों में बिकते हैं, भोजन में मिलावट की संभावना बढ़ जाती हैं, निम्न गुणवत्ता वाले भोज्य पदार्थ भी बेच दिये जाते

हैं, अतः उपभोक्ता का स्वास्थ्य प्रभावित होता हैं। शहरीकरण एवं फैशन के कारण माताएँ कई बार अपना दूध शिशु को नहीं पिलाती हैं, तथा बालक को गाय के दूध या पाउडर के दूध पर पालती हैं। उन्हें दूध तैयार करने तथा पिलाने की समुचित विधि का ज्ञान नहीं होता हैं, जिसके कारण शहरी क्षेत्रों में शिशु पोषण जनित रोगों का शिकार हो जाता हैं।

9. फैशन

आज के विज्ञापन के युग में तथा आधुनिकता की होड़ में प्राकृतिक भोजन के स्थान पर कृत्रिम भोजन पर अधिक ध्यान दिया जा रहा हैं। इसका सबसे ज्यादा असर किशोरियों पर पड़ता हैं, वे दुबले–पतले होने की चाह में सुबह का नाश्ता छोड़ देती है। दिन के आहार तथा रात्रि के भोजन में भी कम मात्रा में भोजन ग्रहण करती हैं। लंच एवं डिनर के समय सैंडविच, बर्गर, आईसक्रीम, पावभाजी आदि फास्ट–फूड ग्रहण करती हैं, जिसमें पौष्टिक तत्वों का काफी अभाव रहता है, परिणामस्वरूप वे कुपोषित हो जाती है।

10. पाचन, अवशोषण एवं चयापचय में कमी

व्यक्ति द्वारा पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार ग्रहण करने पर भी कई बार आन्तरिक अंगों में दोष होने, ठीक प्रकार से किया न कर पाने अथवा अन्य कारणों से भोज्य तत्वों का शरीर में पूर्णतः पाचन व अवशोषण एवं चयापचय नहीं हो पाता है तो शरीर में पौष्टिक तत्वों की कमी हो जाती हैं तथा कुपोषण हो जाता है।

11. लिंग भेदभाव

भोजन के वितरण में लड़कों और लड़कियों के बीच असमानता और लड़की की सामान्य उपेक्षा कुपोषण में योगदान करती हैं, इसलिए प्रजनन आयु वर्ग में 60 प्रतिशत भारतीय महिलाओं में खून की कमी होती हैं, लैंगिक असमानता के चलते महिलाओं के भोजन की मात्रा और गुणवत्ता दोनों निम्न हैं, परिणामस्वरूप उनके बच्चें कुपोषण के शिकार हो जाते हैं।

12. कम उम्र में मां बनना

किशोरियों की खराब पोषण संबंधी स्थिति का कारण वयस्क बनने से पहले विवाह और एक से अधिक गर्भधारण हैं, एक और निराशाजनक तथ्य यह हैं कि 30 प्रतिशत बच्चे जन्म कम वजन के साथ पैदा होते हैं।

13. स्वच्छता की अनदेखी

खराब स्वच्छता प्रथांए और असुरक्षित पेयजल भारत में कुपोषण का एक महत्वपूर्ण कारण हैं, अधिक आबादी के तथा शौचालय की कमी के कारण शौच के लिए घर से बाहर निकलते हैं, जिसके कारण कई और रोग होते हैं।

14. धर्म

भारत में कुछ धर्म विशेष में मांस खाना व्यक्तियों को प्रतिबंधित हैं, जिसका तात्पर्य है कि वे डेयरी और अंडे सहित किसी भी प्रकार के पशु उत्पाद का उपभोग नहीं करते हैं, यह एक गंभीर समस्या हैं, जिससे अपर्याप्त प्रोटीन का सेवन किया जाता हैं, क्योकि 56 प्रतिशत गरीब भारतीय परिवार प्रोटीन का उपभोग करने के लिए अनाज का सेवन करते हैं।

भाग–तृतीय

कुपोषण की समस्या के समाधान हेतु प्रयास

भारत में महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण की समस्या के समाधान हेतु समय–समय पर सरकार एवं अन्य प्रयास किये गये हैं, जो निम्नवत् हैः–

नियमित टीकाकरण कार्यक्रम

- सम्पूर्ण टीकाकरण कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार डिपथेरिया (रोहिणी), कुकरखांसी, टिटनेस, पोलियों, खसरा, बाल्यावस्था में होने वाली गंभीर तपेदिक और पैपेटाइटिस–बी जैसी सात बीमारियों को रोकने के लिए टीका लगवाती है। इन बीमारियों से टीका लगवाकर बचा जा सकता है।
- स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने वर्ष 2014 में मिशन इन्द्रधनुष शुरू किया है, जिसका लक्ष्य पूर्ण टीकाकरण दर को 65 प्रतिशत से बढ़ाकर 90 प्रतिशत करना है।

नवजात शिशु सुरक्षा कार्यक्रम (एन.एस.एस.के.)

- नवजात शिशु सुरक्षा कार्यक्रम एक बुनियादी नवजात शिशु देखरेख और पुनर्जीवन प्रशिक्षण कार्यक्रम है।
- इसे शिशु जन्म से जुड़े मुद्दों जैसे हाइपोथरमिया (अस्पताल) संक्रमण की रोकथाम, स्तनपान शीघ्र शुरू करना और बुनियादी नवजात शिशु पुनर्जीवन पर आवश्यक कार्यवाही करने के लिए चलाया गया है।

राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम (आर.बी.एस.के.)

- राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम एक पहल है, जिसका उद्देश्य जन्म से 18 वर्ष तक के बच्चों की पहचान और शीघ्र हस्तक्षेप द्वारा जन्म के समय त्रुटियों, कमियों, रोगों, निःशक्तता सहित विकास में विलम्ब अर्थात 4डी को कवर करना है।
- इस कार्यक्रम द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वाले छह साल तक के आयु के बच्चों के साथ सरकारी एवं सरकार द्वारा सहायता प्राप्त स्कूलों में पहली से 12वीं कक्षा तक में पढ़ने वाले बच्चों को लक्ष्य बनाया गया है।

अत्यधिक गंभीर कुपोषित बच्चों के उपचार हेतु पोषण पुनर्वास केन्द्र (एन.आर.सी.)

- एनआरसी स्वास्थ्य केन्द्रों में स्थिर एक यूनिट है, जहां गंभीर रूप से कुपोषण (एसएएम) से ग्रस्त बच्चों को भर्ती किया जाता है और इन बच्चों की अच्छी तरह देखभाल की जाती है, ताकि इनके स्वास्थ्य में सुधार आए और शिशु मृत्यु–दर में गिरावट आए।
- एसएएम को लम्बाई के अनुसार बहुत कम वजन होना (डब्ल्यू एच ओ वृद्धि मानक के अनुसार मध्यिका से 3 अंक कम) गंभीर दिखाई देने वाली वेस्टिंग होने से परिभाषित किया गया है।
- 6 से 60 माह के आयु वर्ग के एस ए एम शिशुओं की जांच स्वास्थ्य केन्द्रों और समुदाय स्तर पर विनिर्दिष्ट मानदण्डों का प्रयोग करके की जाती है।

विटामिन ए अनुपूरक कार्यक्रम

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 6 माह से 59 माह तक की आयु के बच्चों को विटामिन 'ए' की खुराक दी जाती है। पहली खुराक (विटामिन ए की एक लाख अंतराष्ट्रीय यूनिट (आईयू) बच्चे को 9 माह की आयु में टीका लगाते समय दी जाती है और उसके बाद बच्चे को 6–6 माह के अंतराल में विटामिन ए (विटामिन ए की दो लाख अंतराष्ट्रीय यूनिट) की खुराक दी जाती है, इस प्रकार 59 माह की आयु तक एक बच्चे को विटामिन ए की कुल 9 खुराकें खिलाई जाती है।

जीवन के सभी चरणों में आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया के नियंत्रण हेतु राष्ट्रीय आयरन प्लस प्रयास (आई.एम.ए. और कृमिनाशक औषधि)

राष्ट्रीय आयरन प्लस प्रयास पांच साल तक के बच्चों को पर्यवेक्षित विधि से आयरन फोलिक एसिड की खुराक, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं, प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं, किशोरों /किशोरियों को आई एफ ए अनुपूरक और छह महीने में एक बार कृमिनाशक औषधि देने के लिए शुरू किया गया है।

किशोर प्रजनन और यौन स्वास्थ्य (ए.आर.एस.एच.)

- राष्ट्रीय किशोर प्रजनन और यौन स्वास्थ्य रणनीति के अंतर्गत किशोरों को प्रदान की जाने वाली विभिन्न यौन और प्रजनन स्वास्थ्य सेवाओं के ढांचे की व्यवस्था की गई है।
- इस रणनीति में किशोरों, विवाहित और अविवाहित लड़कियों और लड़कों के लिए एक महत्वपूर्ण सेवा पैकेज की व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत उन्हें निवारक, प्रोन्नयन, उपचारात्मक और सलाह सेवाएं भी प्रदान की जाती है।
- इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नियत दिनों और समय पर सलाह सेवा, उपचार की प्राथमिक, द्वितीय और तृतीय स्तर की नियमित जांच सेवाएं प्रदान की जाती है।

माहवारी के दौरान स्वच्छता को बढ़ावा देने की योजना

- माहवारी के दौरान स्वच्छता को बढ़ावा देने की योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में किशोरियों (10 से 19 वर्ष की उम्र वाली) के बीच बेहतर स्वास्थ्य एवं स्वच्छता को बढ़ावा देने हेतु इस बात को सुनिश्चित करना है कि उनके पास सैनेटरी नैपकिन के उपयोग के बारे में पर्याप्त जानकारी और ज्ञान रहें।
- सैनेटरी नैपकिन का पैक (जिसमें 6 पेड होते है) '6666फ्रीडेज के नाम से जाना जाता है और यह आशा द्वारा किशोरियों को रू. 6 प्रति पैक की दर पर बेचा जाता है।

साप्ताहिक आयरन फोलिक एसिड अनुपूरक (डब्ल्यू.आई.एफ. एस.) कार्यक्रम

- डब्ल्यू आई एफ एस कार्यक्रम का उद्देश्य किशोर/किशोरियों (10 से 19 वर्ष) में एनीमिया और उसकी गंभीरता को कम करना है।
- इसका कार्यान्वयन ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में निम्नलिखित दो लक्ष्य समूहों के लिए किया जा रहा है।
- किशोर और किशोरियां, जो सरकारी/सरकारी सहायता प्राप्त/नगर पालिका स्कूलों में 6 से 12वीं कक्षा में नामांकित है।
- किशोरियां जो स्कूल में नहीं पढ़ती है।
- डब्ल्यू आई एफ एस कार्यक्रम के अन्तर्गत विवाहित गर्भवती और स्तनपान कराने वाली किशोरियों को शामिल किया गया है।

डब्ल्यू.आई.एफ.एस. कार्यक्रम के घटक

- साप्ताहिक आधार पर आयरन और फोलिक एसिड अनुपूरक खुराक
- जांच और रेफरल
- वर्ष में दो बार कृमिनाशक औषधि खिलाना
- सूचना और सलाह
- अन्य पहल

पोषण संसाधन मंच (एनआरपी)

पोषण संसाधन मंच महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा उठाई गई पहल है, जिसे विभिन्न पणधारियों को पोषण और बाल विकास से संबंधित संसाधनों और वस्तुओं को एकत्र और उपलब्ध कराने के उद्देश्य से विकसित किया गया है।

पोषण हेल्पलाइन

महिला और बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने बेहतर स्वास्थ्य के लिए पोषण पर जागरूकता अभियान की पहल करने के लिए टोल फ्री पोषण हेल्पलाइन की योजना बनाई है। जो पोषण के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए एक अभिनव पहल है।

मदर एण्ड चाइल्ड ट्रैकिंग सिस्टम (एम.सी.टी.एस.)

- एमसीटीएस एक नाम आधारित गर्भवती महिला और शिशु खोज प्रणाली है।
- इसका उद्देश्य व्यक्तिगत स्तर पर प्राप्त स्वास्थ्य सेवाओं खासतौर से प्रसवपूर्व जांच और टीकाकरण जैसी सेवाओं के बार में सूचना प्रदान करना है। इसके लिए प्रत्येक महिला और शिशु द्वारा स्वास्थ्य कार्यक्रम के अंतर्गत ली गई हर सेवा का निरीक्षण होता है।

राष्ट्रीय टीका एक्सप्रेस

- यह नियमित टीकाकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत वैकल्पित टीका के कार्यान्वयन में कमी को पूरा करने के लिए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की एक पहल है।
- इस पहल के हिस्से के रूप में 'राष्ट्रीय टीका एक्सप्रेस' बांड नाम वाला निर्धारित वाहन टीका डिलवरी प्रक्रिया को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने में मदद करता है, इसमें निम्नलिखित शामिल है–
- टीकाकरण के स्थानों पर टीका वितरण
- खुले और बिना इस्तेमाल हुए टीकों को भण्डार में वापस ले जाना ताकि उसे बाद के दिनों में उपयोग किया जा सके।

भारत में कुपोषण की स्थिति का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि सामान्य तौर पर महिलाएं, बच्चे, किशोरियां एवं किशोर कुपोषण से ग्रसित है, लेकिन जब विशेष रूप से लिंग एवं क्षेत्रवार विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि गर्भवती एवं धात्री महिलाएं, 0–5 वर्ष के बच्चे तथा किशोरियां कुपोषण से अधिक प्रभावित है। साथ ही ग्रामीण एवं जनजातीय महिलाएं एवं बच्चे अधिक कुपोषण से ग्रसित हैं तथा शहरी क्षेत्रों के गन्दी बस्तियों में रहने वाली अधिकांश महिलाएं, बच्चे, किशोरियां, किशोर एवं पुरूष भी कुपोषित है। इससे स्पष्ट है कि भारत में कुपोषण का प्रत्यक्ष सम्बन्ध गरीबी, बेरोजगारी के साथ–साथ अशिक्षा, अज्ञानता, लिंगभेद एवं निम्न आर्थिक स्थिति से है। इसलिए भारत से कुपोषण को समाप्त करने के लिए लक्षित समूह को केन्द्र में रखते हुए बहुआयामी रणनीतियां एवं कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान समय में कुपोषण को समाप्त करने के लिए संचालित कार्यक्रम काफी प्रभावी नहीं है।

संदर्भ ग्रन्थ

- *आचार्य, एस.टी., बालकों का पालन पोषण, साहित्य मण्डल प्रकाशन, 1961*
- *बख्शी, भूपिन्दर कौर, मानवीय विकास, साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978.*
- *राजहंस, आरती, बालविकास एवं मानवीय संबंध, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986.*
- *जैन, प्रीति, कार्यकारी एवं घरेलू माताओं की किशोर बालिकाओं के समायोजन की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, 1996*
- *पल्टा, अरूणा, आधारभूत पोषण, शिवा प्रकाशन, आगरा, 2001*
- *शर्मा, राजेन्द्र, औद्योगिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002*
- *मिश्र, डी.के., जनसंख्या पर्यावरण एवं विकास, ए.पी.एच. पब्लि. हाउस, नई दिल्ली, 2004.*
- *सिंह, श्यामधर एवं मीरा सिंह, सामाजिक समस्याओं का समाजशास्त्र, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी 2005.*
- *नागे, अनिता एवं कामिनी जैन, पोषण एवं स्वास्थ्य, एक अध्ययन, रिसर्च लिंक–24, वॉ.–4, अंक–7, 2006*
- *श्रीवास्तव, सुषमा, परिवार कल्याण के प्रति महिलाओं की जागरूकता, रिसर्च जर्नल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्स, ईयर–5, वॉ.–8, अगस्त 2010.*
- *श्रीवास्तव, अर्चना, भूख की भयावह होती आग, योजना, वर्ष–54, अंक–10, अक्टूबर 2011.*

- पंत, नवीन, गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा योजना, वर्ष–54, अंक–10, अक्टूबर, 2011
- सारस्वत, ऋतु, स्वास्थ्य के मोर्चे पर लड़ती भारतीय स्त्री, योजना, वर्ष 56, अंक–6, 2012
- मन्नोशकर, एम जैभर्थ, न्यूट्रिशनल स्टेट्स ऑफ चिल्ड्रेन इन इण्डिया : एन ओवरव्यू ऑफ सोशियो–इकोनॉमिक कन्डीशन, इण्डियन जरनल ऑफ रिसर्च : वाल्यूम–1, इश्यू : 12 पेज 49–50, वर्ष 2012
- पीकोट, जे., डी. हार्टवेल एण्ड पी. हार्स, द इफेक्टिवनेस ऑफ इन्टरवेन्शन टू ट्रीट सर्व एक्यूट माल–न्यूट्रिशनल इन यंग चिल्ड्रेन : ए सिस्टेमेटिक रिव्यू हेल्थ टेक्नोलॉजी असिसमेन्ट, वाल्यूम–16, नं.–19, पेज 99–101, वर्ष 2012
- रामचंद्रन, प्रेमा, भारतीय बच्चों में कुपोषण, योजना, वर्ष 56, अंक 11, नवम्बर, 2012
- सिन्हा, शांता, बाल अधिकारों का संरक्षण, योजना वर्ष 56, अंक–11, नवम्बर, 2012.
- पिपरिया, रेखा, पोषण एवं स्वाथ्य के प्रति महिलाओं की जागरूकता का अध्ययन, रिसर्च जर्नल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंस, वर्ष–7, वॉ.–13, दिसम्बर, 2012
- रपरिया, राजेश, खाद्य सुरक्षा, अधिकार एवं चुनौतियाँ, योजना, वर्ष 57, अंक–12, दिसम्बर 2013.
- अरूण, ए.के., खाद्य सुरक्षा : पोषण और जनस्वास्थ्य, योजना वर्ष–57, अंक–12, दिसम्बर, 2013.
- डोगरा, भारत, भूख, कुपोषण व स्वास्थ्य का संकट, सोशल चेंज पेसर्स, नई दिल्ली, 2013
- प्रपन्न, कौशलेन्द, भूखे बचपन के लिए खाद्य सुरक्षा, योजना, वर्ष 57, अंक–12, दिसम्बर, 2013.
- धर, प्रांजल, रोकना ही होगा खाद्य अपव्यय को, योजना वर्ष–57, अंक–12 दिसम्बर, 2013
- श्रीवास्तव, रश्मि, भारतीय बच्चों में कुपोषण, शोध समीक्षा और मूल्यांकन, इंटरनेशनल इंडेक्स्ड एण्ड रिफर्ड जर्नल, वा–4, इश्यू–48, जनवरी 2013.
- शैलजा, भारत का स्वास्थ्य : मुद्दे और चुनौतियाँ, योजना वर्ष–58, अंक–2 फरवरी, 2014.
- सिंह, नीरू, भारतीय बचपन की यथार्थता, शोध पत्रिका, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 2015

आधी आबादी से सरोकार के दृष्टिगत गांधी और अम्बेडकर पर एक दृष्टि

डा0 संजय अग्रवाल*

गांधीजी और डा. अम्बेडकर दोनों का विचार था कि भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में जहाँ अनेक धर्म, भाषायें और परम्परायें हैं, वहीं सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्तर पर अनेक भेद और रुढ़िवादितायें भी हैं। समाज में जिन वर्गों का सदियों से शोषण हुआ, जिनके अस्तित्व को ही नकारात्मक रूप से देखा गया, जिन्हें सदैव दूसरे दर्जे का नागरिक माना गया, दुर्भाग्य से स्त्रियाँ उनमें से एक हैं। महिलाओं के प्रति अन्याय के दो क्षेत्र हैं–पारिवारिक मामले और सामाजिक क्षेत्र।

हमारे राष्ट्र की महिलाएँ परम्परागत रूप से पीड़ित, शोषित व उपेक्षित रही हैं। सामान्यतः 1954 से पूर्व महिलाओं का सम्पत्ति पर अधिकार नहीं था। न तो स्त्री को दत्तक के रूप में स्वीकार किया जाता था और न वे स्वयं किसी को दत्तक के रूप में ले सकती थी। पिता या पति की सम्पत्ति में भी स्त्री को कोई अधिकार नहीं था।

यद्यपि हिन्दू ग्रन्थों में नारी वर्ग का स्थान आदिकाल में सर्वोपरि और पूजनीय माना गया है, वेदों की एक ऋचा में 'यत्र नारी पूज्यन्ते तत्र देवता वसति' का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु कालान्तर में परिस्थितियाँ परिवर्तित हुईं और पुरूष के अहम् ने नारी को दूसरे दर्जे का बनाकर रख दिया। भारतीय नारी जो सदियों से पुरूष प्रधान समाज की दी हुई व्यवस्थाओं और पतनोन्मुख समाज की स्थितियों में रहने के कारण पिछड़े वर्गों में गिनी जाती थी, आगे चलकर प्रायः प्रत्येक सुधार आन्दोलन का आधार बनी।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में श्रीमती एनीबेसेन्ट, माग्रेन्ट कंजिस, रूक्मिणी लक्ष्मीपति, लेडी सदाशिव, हीराबाई टाटा, मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने

* *एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल, पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, बाराबंकी।*

राजनीतिक व सामाजिक जागृति की दिशा में एक साथ काम किया और अनेक महिला व बाल कल्याण संस्थाओं की स्थापना की। 1917 में 'इंडियन वोमेन्स एसोसियेशन' की स्थापना यद्यपि राजनीतिक उद्देश्यों के लिए की गयी थी, पर सामाजिक सेवाओं की दिशा में भी इसका विशेष योगदान रहा है। फिर 1927 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन नाम से जिस राष्ट्रव्यापी गैर–राजनीतिक महिला संस्था की स्थापना हुई, उसने स्त्रियों के सामाजिक जागरण, शैक्षिक उत्थान एवं बाल कल्याण की दिशा में एक साथ काम किया। आज भी यह संस्था न केवल सक्रिय है बल्कि एक सशक्त भारतीय महिला संगठन के रूप में समय–समय पर अपनी बुलन्द आवाज में महिलाओं का पक्ष प्रस्तुत करती रहती है।

परन्तु समाज में जब महात्मा गांधी व बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर जैसे महान व्यक्तित्व, शोषित और पीड़ित समाज के उद्धारक के रूप में अवतरित हुए तथा दलितों, उपेक्षितों को स्वतन्त्रता व समानता का अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष किया, जिससे समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। दलितों, शोषितों व पिछड़ों के साथ ही स्त्रियों की स्वतंत्रता को भी गांधीजी ने तरजीह दी है। तत्वतः स्त्री–पुरूष समान हैं। स्त्री का अपना अलग व्यक्तित्व होता है, प्रकृति ने उसे पुरूष की बराबरी से ही मानसिक क्षमता प्रदान की है। त्याग, सहन–शक्ति मेहनत आदि में वह पुरूषों से श्रेष्ठ सिद्ध होती है। अहिंसक लड़ाई के लिए वहीअधिक सुयोग्य है, उसे भी पुरूषों की बराबरी का अधिकार प्राप्त होने चाहिए। गांधीजी ने स्त्रियों को अपने मन से हीन–भावना निकाल कर परिवार में व समाज में अपना यथोचित स्थान प्राप्त करने के लिए आवाहित किया है।

परम्परागत भारतीय पारिवारिक ढाँचा स्त्रियों की गुलामी पर आधारित था। उसमें स्त्रियों को कोई भी अधिकार नहीं दिये गये थे। पुराने मनीषियों की यही धारणा थी कि नारी आजाद रहने की पात्र नहीं है। पति की एक निष्ठ सेवा करना ही नारी का परम् धर्म माना जाता था। रूढ़ि से तो त्रैवर्णिकों की स्त्रियों को शिक्षा का भी अधिकार नहीं था। शास्त्रों की आज्ञानुसार परिपक्वता से पहले ही लड़की का विवाह हो जाना चाहिए।

परम्परानुसार नारी का स्थान दोयम होने से स्वतंत्र रूप से धर्मकृत्य करने की उसे मनाही थी। पति की मृत्यु होने के बाद उसकी और भी दुर्गति होती थी। गांधीजी के मन में भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्मशास्त्र के बारे में परम आदर और आत्मीयता का भाव था। सीता, दमयन्ती और द्रौपदी को आदर्श नारी के रूप में वे बार–बार जनता के सामने प्रस्तुत करते रहे, परन्तु जहाँ जहाँ हिन्दु धर्म शास्त्रों अथवा परम्पराओं को स्त्रियों के आत्मनिर्णय के मार्ग में बाधक होते देखा वहाँ–वहाँ शास्त्र–वचनों को ताक पर रखकर स्त्री स्वतंत्रय की खुल्लमखुल्ला तरफदारी करते रहे। हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार विवाह को नारी जीवन का एक आवश्यक संस्कार माना जाता था, किन्तु गांधीजी ने कहा पुरूषों के समान ही महिलाओं को भी आजन्म अविवाहित रहने की छूट होनी चाहिए।

महात्मा गांधी और डा. अम्बेडकर दोनों ने ही स्त्रियों को आगे लाने, उन्हें शिक्षित करने, समाज में सम्मानपूर्वक स्थान दिलाने, उनके द्वारा किये गये कार्यों को महत्व देने, समाज में समानता का अधिकार दिलाने आदि के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं।

महिलाओं को परम्परागत रूप से पुरूषों द्वारा प्रताड़ित देखकर गांधीजी बहुत दुःखी होते थे। गांधीजी ने देखा कि पुरूष ने, जब भी उसे मौका मिला, स्त्री को क्रोध व वासना का शिकार बनाया। पुरूषों द्वारा महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार के कारण ही कन्या के जन्म को परमात्मा का प्रकोप माना जाता था और जीवन–पर्यन्त उसे सताया और प्रताड़ित किया जाता था। यही कारण था कि उसे घर में परदे से ढक कर, पंक्षी की तरह पिंजरे में रखा गया। उसे न शिक्षा दी गयी, न आजीविका कमाने का अवसर, पुरूष के बराबर समता का अवसर उसे प्राप्त नहीं था। गांधीजी महिलाओं को इस पुरूष–प्रधान समाज व राज्य की दुर्गति से बचाना चाहते थे।

गांधीजी की मान्यता थी कि पुरूष के समान महिला भी मानव के रूप में ईश्वर की एक अद्भुत देन है। ईश्वर ने पुरूष की भाँति उसे भी नैतिकता, विवेकशीलता व सामाजिकता की क्षमताएं प्रदान की हैं, और ऐसा

करके उसे पुरूष की सहधर्मिणी बनाया है। परमात्मा ने महिलाओं में उन सभी गुणों का समावेश किया है, जो उसने पुरूषों को दिये हैं, बल्कि भद्रता, विनयशीलता, सहनशीलता, स्नेह व त्याग के ऐसे विशिष्ट गुण भी प्रदान किये जिनके सन्दर्भ में महिलायें पुरूषों के समकक्ष ही नहीं, उनसे श्रेष्ठ हैं। इसलिए पुरूषों को चाहिए कि वे महिलाओं को अपने से निकृष्ट मानकर उन्हें न तो सतायें और न ही प्रताड़ित करें।

गांधीजी महिलाओं को पुरूषों के परम्परागत अवांछनीय बन्धन से मुक्त करना चाहते थे। वे चाहते थे कि पुरूष महिलाओं को सुन्दरता व वासना के प्रतीक रूप में न देखें तथा उनके साथ घरेलू नौकरों व जानवरों का सा बर्ताव न करें। वे यह भी चाहते थे कि महिलाओं को पुरूषों के समान शिक्षा तथा रोजगार का समान अवसर मिले, जिससे वो पुरूषों के प्रति शैक्षिक व आर्थिक रूप से निर्भर न रहें। जब तक महिलाएँ पुरूषों पर आश्रित रहेंगी, पुरूष पर शैक्षिक व आर्थिक निर्भरता से मुक्त नहीं होंगी, जब तक वे एक मानव के रूप में सम्मान के साथ जीवन–निर्वाह नहीं कर पायेंगी।

गांधीजी ने महिलाओं को मुख्य रूप से माता, गृहलक्ष्मी व सहधर्मिणी के रूप में देखा। जिससे कि वे न केवल अपने बच्चों का समुचित पालन–पोषण व शिक्षण कर सकें, बल्कि अपने पति की सहधर्मिणी बनकर उसके जीवन को सार्थक व सम्पूर्ण भी बना सकें तथा परिवार, समाज व राज्य में अपनी यथोचित भूमिका निबाह सकें। गांधीजी चाहते थे कि समाज व राज्य पुरूषों के मुकाबले महिलाओं से लिंग के आधार पर भेदभाव न करें तथा उसके उद्धार व कल्याण के लिए विशेष अवसर उपलब्ध कराये। राज्य उन्हें पुरूषों के समान स्तर प्रदान करने के लिए शिक्षा, रोजगार तथा विधानमण्डलों में भाग लेने के अवसरों में पहल करें।

डा. अम्बेडकर भी नारी समाज की दशा को देखकर काफी द्रवित थे। उन्होंने भारतीय समाज की असंगतियों तथा असमानताओं का सविस्तार विश्लेषणात्मक विवेचन किया, तथा अछूत समस्या के साथ मजदूर और नारी जाति की स्थिति पर भी गहराई से विचार किया। डा. अम्बेडकर ने

पाया कि भारतीय नारी के साथ हिन्दू धर्म ने अन्याय किया है। बिना किसी वजह के हिन्दू स्त्री ज्ञान प्राप्ति से वंचित रह जाती है। ज्ञान प्राप्ति का तो प्रत्येक व्यक्ति को जन्म सिद्ध अधिकार है। डा. अम्बेडकर की दृष्टि में मनुस्मृति, नारी की स्वतंत्रता, समानता और सम्मान की गिरावट का कारण है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मनु ने ही नारी को पुरूषाश्रित बनाया है और यह आवश्यक बतलाया है कि वह पुरूष के संरक्षण में रहें बचपन में वह पिता की देख–रेख में पले और बड़ी हो, युवा अवस्था में वह पति की सुरक्षा में रहे और बुढ़ापे में वह अपने पुत्रों पर निर्भर हो। परिणामतया वह जन्म से मृत्यु तक पुरूषाधीन रहे। डा. अम्बेडकर का मानना था कि मनु ने पुरूष को पूर्ण स्वतंत्र और अधिकारों से युक्त किया है, जब कि स्त्री को पराधीन और अधिकारों से वंचित बना दिया है। उनके मन में यहीं से यह विचार उठा था कि नारी को बिना सम्माननीय और स्वतंत्र स्थान दिये भारतीय समाज उठ नहीं सकता।

डा. अम्बेडकर ने स्त्री को समाज की आधारशिला माना है वही शिक्षा की प्रथम पाठशाला है। स्त्री के साथ रहकर ही पुरूष के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। उसने अपनी कार्यकुशलता, बुद्धि, चातुर्य, सहज ज्ञान, त्याग, तपस्या, कर्म, धर्म आदि के माध्यम से समाज को एक व्यवस्था और सुविधा दी है, इसलिए उसकी उपेक्षा करके समाज का विकास कदापि सम्भव नहीं है।

गांधीजी ने कहा कि नारियों को समाज में पुरूषों के समान अधिकार मिलना चाहिए, इस बात पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता। वे उन्हें पुरूषों के समान ही सामाजिक अधिकार प्रदान करना चाहते थे। उनकी मान्यता थी कि जिस तरह वैदिक समय में स्त्रियों को प्रत्येक कार्य में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे उसी प्रकार आज भी उनको अधिकार मिलने चाहिए। उन्होंने भी मनुस्मृति के इस नियम को कि स्त्रियों को पुरूष के अधीन मानकर सीमित स्वतन्त्रता दी जाय, मान्य नहीं ठहराया। गांधीजी ने नारी प्रगति में बाधक, पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, दहेज–प्रथा एवं देवदासी प्रथा आदि का भी विरोध किया।

गांधीजी सत्य और अहिंसा के माध्यम से एक आदर्श राज्य की स्थापना करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि अहिंसा का उच्चतम और सर्वोत्कृष्ट स्वरूप स्त्री में ही है, अतः नारी का उत्थान हुए बिना इस समाज व राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं है। गांधीजी ने नारी के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा कि हमें नारी को अबला नहीं समझना चाहिए, क्योंकि नारी में शारीरिक शक्ति भले ही पुरूषों से कम हो लेकिन आत्म–शक्ति, नैतिकता, त्याग, सहनशक्ति और अहिंसा जैसे गुणों से स्त्रियाँ पुरूषों से कहीं आगे होती हैं। उन्होंने कहा कि यदि अहिंसा हमारे जीवन का अंग बन गयी तो भविष्य स्त्रियों के हाथों में होगा। नारी अपनी शक्ति स्वयं पहचाने इसके लिए गांधीजी ने उसकी शिक्षा पर विशेष बल दिया।

गांधीजी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी नारियों का आह्वान किया था। उन्होंने अपने आश्रम में तथा अपने सभी कार्यक्रमों में स्त्रियों को पुरूषों के समान ही प्रत्येक काम में भाग लेने के लिए समान दर्जा प्रदान किया था। वह भारतीय स्त्रियों के पिछड़ेपन से बेहद दुःखी होते थे और उनके द्वारा दुर्बलता प्रकट करने पर नाराज। 'अबला' शब्द से उन्हें चिढ़ थी। स्वतन्त्रता संग्राम में विजय के लिए गांधीजी उन्हें अपना सच्चा और विश्वासी साथी मानते थे। उनके सहयोग के बिना स्वतन्त्रता प्राप्त करना उन्हें कठिन ही नहीं, असम्भव लगता था। स्त्री–पुरूष, ऊँच–नीच या छोटे–बड़ें की भावना उन्हें असह्य थी। इएलिए 1930 में जब 'नमक–सत्याग्रह' शुरू हुआ तो इस बार उन्होंने स्त्रियों को खुले शब्दों में आंदोलन में शामिल होने के लिए आमन्त्रित किया। इस आह्वान के प्रत्युत्तर में हजारों स्त्रियाँ मैदान में कूद पड़ी। यह पहला अवसर था जब भारतीय महिलायें सामूहिक रूप से सीधे स्वतन्त्रता संग्राम में उतरीं।

गांधीजी ने अपनी अछूतोद्धार, हरिजन–कल्याण तथा महिला एवं बाल कल्याण सेवाओं में सदा स्त्रियों को साथ लिया और उन्हें इस क्षेत्र में खुलकर काम करने का अवसर प्रदान किया। गांधीजी कहते थे–सामाजिक क्रान्ति के बिना स्वराज्य का कोई अर्थ न होगा और देश की आधी जनशक्ति यानी महिलाओं की इस क्रान्ति से अलग रहकर उसकी सफलता संदिग्ध है। महिलाओं के जीवन में क्रान्ति तभी आ सकती है, जब वे स्वयं इसे समझें, अपनायें और आगे बढ़कर इसमें भाग लें।

गांधीजी के इस तरह के आह्वान से राजनीतिक व सामाजिक दोनों क्षेत्रों में महिला कार्यकत्रियों की जैसे बाढ़ आ गयी। भारतीय इतिहास के इसी काल में सैकड़ों–हजारों की संख्या में स्त्रियाँ घरों से निकलकर समाजसेवा में उतरीं। गाँव–गाँव साक्षरता की ज्योति जलाने वाली वेल्दी एच. फिशर और मिशनरी कार्यों को समर्पित मदर टेरेसा की मानवीय सेवायें आज विश्व–विख्यात हो चुकी हैं।

अंग्रेजी शासन के दिनों में जब यूरोप में नारी स्वतन्त्रता की लहर उठी तो डा. अम्बेडकर ने भी महिलाओं को समाज–रचना की एक बड़ी ताकत के रूप में पहचाना और उन्हें परतन्त्रता की बेड़ी से मुक्त कराने के लिए न सिर्फ कोशिश की, बल्कि उसमें सफल भी हुए। अन्ततः संविधान में किसी भी लिंग–भेद को तिलांजलि दे दी गयी। स्त्रियों को उनके जन्म के साथ समाज में सम्मानजनक दर्जा दिलाने के लिए डा. अम्बेडकर ने जीवन–पर्यन्त प्रयास किये हैं।

उन्होंने 5 फरवरी, 1951 को 'हिन्दू कोड बिल' के माध्यम से संसद और समाज में अपने व्याख्यान और उगलते लेखों द्वारा अपना दृष्टिकोण पूरी तार्किकता के साथ रखा। अम्बेडकर ने संसद में विधेयक को प्रस्तावित करते समय कहा था– ''मैं इस सदन से केवल यही अनुरोध कर रहा हूँ कि यदि आप हिन्दू व्यवस्था, संस्कृति, हिन्दू समाज की रक्षा करना चाहते हैं तो जहाँ मरम्मत की आवश्यकता है, वहाँ मरम्मत कीजिए। इस विधेयक का उद्देश्य हिन्दू धर्म के उन भागों की मरम्मत भर करना है जो टूट–फूट गये हैं। परन्तु यह एक दुःखद स्थिति थी कि हिन्दू समाज व हिन्दू नारी के तथाकथित हितैषी सरदार पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद और संविधान के कुछ अन्य कट्टर हिन्दू नेता इस बिल के सख्त विरोधी थे, परिणामस्वरूप यह बिल पास न हो सका। डा. अम्बेडकर ने इस बिल को पुनः 17 सितम्बर, 1951 को संसद में पेश किया किन्तु इन कट्टरपंथियों के आगे प्रधानमंत्री पं. नेहरू को भी घुटने टेकनें पड़े और बिल पास हुए बिना ही रह गया। डा. अम्बेडकर अपने सिद्धान्त पर अड़े रहे, जिसकी कीमत उन्हें कानून मंत्री के पद से इस्तीफा देकर चुकानी पड़ी। किन्तु इसके बावजूद वह नारी वर्ग के सुधार, समता एवं कल्याण के प्रति बड़े ही उत्सुक थे।

नारी उद्धार की बात लोगों के गले उतारने के लिए बाबा साहब ने स्वयं अपने जीवन में भी अनेक चुनौतियाँ झेलीं। डा. अम्बेडकर ने नारी उद्धार के लिए जो कदम उठाये वह केवल अछूतों के लिए नहीं उठाया, किसी एक जाति के लिए नहीं उठाया, अपना समर्थन पाने या किसी वोट बैंक को पक्का करने के लिए नहीं उठाया बल्कि सम्पूर्ण नारी समाज के लिए उठाया। यह नारी केवल अछूत नारी नहीं थी, केवल शूद्र नारी नहीं थी बल्कि यह ब्राह्मण नारी भी थी, क्षत्रिय नारी भी थी और वैश्य नारी भी थी।

गांधीजी शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की मुक्ति में विश्वास रखते थे। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिए जो लड़के–लड़कियों को स्वयं के प्रति अधिक उत्तरदायी बना सके और एक दूसरे के प्रति अधिक सम्मान की भावना पैदा कर सके। 'ग्रेट वोमेन ऑफ इण्डिया' की भूमिका में महान चिन्तक और राजनेता भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. एस. राधाकृष्णन ने कहा है– ''यह तथ्य अधिक महत्वपूर्ण है कि हम मनुष्य हैं न कि वे भौतिक विशेषतायें जो हमें एक दूसरे से अलग करती है।'' गांधीजी ने यह अच्छी तरह महसूस किया था कि आधुनिक सभ्यता की क्रूरता एवं नृशंसता पर नियंत्रण करने के लिए स्त्री शक्ति का संवर्द्धन करना होगा। जो शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र को सभ्यता की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए आवश्यक है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र को उसके उत्थान हेतु टिकाऊ ऊर्जा प्रदान करने के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में होती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का विचार भी यही था कि शिक्षा किसी भी सभ्य राष्ट्र की प्राणवायु है, इसके अभाव में वह स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र है अर्थात् बिना आत्मा के शरीर जैसे है।

गांधीजी भारत से निरक्षरता के कलंक को दूर करना चाहते थे, जिससे कि वह देश फिर से साक्षर और बुद्धिमान लोगों का देश बने और निरक्षरता के कारण जो लोगों के प्रति आर्थिक व सामाजिक अनाचार होता है उसकी समाप्ति हो। गांधीजी का कहना था कि भारत को विश्वगुरू की उपाधि तब तक फिर से प्राप्त नहीं होगी, जब तक हम भारतीय साक्षर न

हो जायें। उन्होंने लोगों को मत देने और चुने जाने के अधिकार की प्राप्ति के लिए भी साक्षरता की शर्त रखी थी, जिससे कि लोगों के मताधिकार का दुरूपयोग न हो सके और लोग निरक्षर विधि निर्माताओं की मूर्खता पर हँसे नहीं।

गांधीजी की मान्यता था कि लोग न केवल साक्षर बनें, बल्कि प्राथमिक शिक्षा स्तर तक तो सभी को शिक्षा प्राप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'वर्धा शिक्षा योजना' बनायी, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि सात वर्ष तक के बच्चों को शिक्षित करने का कर्तव्य तो स्वयं माँ–बाप उठायें, और उसके बाद 7–14 वर्ष की आयु तक के बच्चों की शिक्षा राज्य के द्वारा अनिवार्य व निःशुल्क रूप से, किसी व्यवसाय के माध्यम से दी जाए जिससे कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब बच्चे स्कूल से बाहर आयें तो वे भी कोई छोटा–मोटा धंधा करके अपनी आजीविका कमा सकें और आर्थिक रूप से अपने माँ–बाप पर निर्भर न रहें और ऐसा करते समय लड़के लड़कियों के बीच भी कोई भेदभाव न हो। एक स्थान पर गांधीजी ने लिखा है 'एक आदमी को पढ़ाओगे तो एक व्यक्ति शिक्षित होगा, एक स्त्री पढ़ाओगे तो पूरा परिवार शिक्षित होगा।

गांधीजी यह भी कहते थे कि भारत में महिलाओं की शिक्षा चूँकि ज्यादा नहीं हो पाती है इसलिए महिलाओं की ऐसी शिक्षा व्यवस्था करनी चाहिए जो उनकी सभ्यता और संस्कृति से जुड़ी हुई हो और उस शिक्षा के द्वारा वह अपनी जीविका चला सकें, जिससे उन्हें अपनी जरूरत की सभी चीजों के लिए किसी और के ऊपर निर्भर न होना पड़े। इसलिए प्रत्येक बालिका को शिक्षा के साथ ऐसी कला सिखायी जाए जिससे वह अपने घर में रहकर ही स्वरोजगार करके अपनी तथा अपने परिवार की जीविका चला सके।

हमारे आज के समाज की सबसे बड़ी माँग यही है कि हम दूसरे के ऊपर निर्भर न होकर स्वयं अपने ऊपर निर्भर रहें। इसके लिए प्रत्येक स्त्री को शिक्षा के अनुसार रोजगार करने की जरूरत है, जिससे कि हमारा देश आगे बढ़ सके और अन्य देशों की तरह कन्धे से कन्धा मिलाकर हम विकसित देशों में अपना नाम कर सकें। आज लड़कियों की शिक्षा के नाम

पर बस उसे साक्षर बनाया जाता है, लोगों का नजरिया अभी भी स्त्री शिक्षा के प्रति बहुत ही पिछड़ा हुआ है, बचपन से ही उनकी शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता, स्नातक या स्नातकोत्तर कराने के बाद उनकी शादी कर दी जाती है यह नहीं सोचा जाता कि आगे चलकर वह क्या करेंगी। स्त्रियों की शिक्षा रचनात्मक ढ़ग से होनी चाहिए, जिससे उनकी आत्मनिर्भरता बढ़ेगी और समाज की भी प्रगति होगी।

बाबा साहब ने भी समाज उत्थान के लिए सबसे पहले नारी उत्थान की वकालत की। अतः कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि महात्मा गांधी और डा. अम्बेडकर द्वारा नारी–उत्थान के लिए जो भी संघर्ष किये गये, उसी का परिणाम है कि आज यहाँ एक ओर नारी शिक्षा में, नौकरी में तथा अन्य क्षेत्रों में कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी प्रगति की ओर अग्रसर है वहीं दूसरी ओर देश की एकता अखण्डता व उसके चहुँमुखी विकास में भी बराबर की भागीदारी निभा रही है।

हमारे लिए यह गौरव की बात है कि भारत–रत्न डा. अम्बेडकर सही मायने में भारत रत्न ही थे, क्योंकि वे भारत के हर एक वर्ग के लिए संघर्षशील रहे जो मानवीय अधिकारों से वंचित था। इसी प्रकार महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता कहना भी अतिशयोक्ति नही है, क्योंकि उन्होंने भी राष्ट्र के सभी पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, नारी वर्ग भी उन्हीं में से एक है। डा. अम्बेडकर को दलितों का मसीहा कहा जाता है, लेकिन उनकी दृष्टि में केवल अछूत ही दलित नहीं थे, बल्कि हर व्यक्ति तथा वर्ग दलित था, जिसे मानवाधिकार से वंचित रखा गया था। उन्होंने स्पष्ट कहा कि दलित वर्ग में वे सभी वर्गों के लोग आते हैं, जो निर्धन तथा अशिक्षित हैं, चाहे वे ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र अथवा कोई भी इन्सान। अतः भारतीय नारी भी दलित वर्ग की एक महत्वपूर्ण इकाई है।

विश्व की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है और समाज की इस महत्वूपर्ण धुरी को बिना सशक्त बनाये न तो समानता की बात संभव है और न ही सामाजिक न्याय की। वस्तुतः पूरा नारी–समाज असमानता

और पिछड़ेपन का शिकार है। उनके साथ विभिन्न स्तरों पर होने वाले भेदभाव, शोषण और अन्याय ने महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को अत्यन्त विषम बना दिया हैं । यदि पूरा विश्व विकसित, विकासशील और पिछड़े देशों में विभाजित है तो पूरा नारी समाज इससे भी अधिक हिस्सों में बँटा हुआ है, जहाँ उनकी स्थिति अत्याधिक विषम परिलक्षित होती है। गांधी और अम्बेडकर के विचारों को ध्यान में रखते हुए आज 'संयुक्त राष्ट्र संघ' सहित अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों और संस्थाओं की ओर से महिलाओं की स्थिति पर किये गये शोधपरख सर्वेक्षण एवं अध्ययनों से जो तस्वीर उभरकर सामने आई है उनमें आज भी नारी की व्यथा कथा प्रमुखता से उजागर होती है। इसलिए अबला नारी को सबल बनाने के लिए वैश्विक स्तर पर भी पहल की जा रही है। आज इस बात को स्वीकार किया जा चुका है कि महिलाओं को सशक्त बनाना समय की सबसे बड़ी मांग है।

गांधीजी व डा. अम्बेडकर ने नारी–जागृति के लिए नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया था, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है जितना तब था। महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए उन पहलुओं को मजबूत करने की आवश्यकता है, जिनका सीधा सम्बन्ध स्वावलम्बन और उत्थान से है। शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र इनमें प्रमुख हैं। आमतौर पर इन सभी क्षेत्रों में महिलायें काफी हैं। कारण चाहे जो भी हो लेकिन इसका दुष्परिणाम महिलाओं को ही भुगतना पड़ता हैं।

वर्तमान समाज की यह आवश्यकता है कि वह नारी की परम्परावादी छवि को नकारे और सामाजिक अन्याय का विराध करें, क्योंकि स्त्री विकास के बिना समाज का विकास अधूरा है। जो धर्म स्त्री को न्याय नहीं दे सकता, ऐसे धर्मों और धार्मिक ग्रन्थों में सुधार आवश्यक है। न्याय, समता और सम्मान का अधिकार नारी को मिले यह सम्पूर्ण समाज के हित में सबसे बड़ी आवश्यकता है।

भारतीय नारी परिवार, समुदाय और समाज में तभी उत्साहपूर्वक अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकती है, जबकि सामाजिक जीवन में उसके

काम और जीवन की दशाओं में सुधार होगा और वह स्वयं को सामाजिक, आर्थिक व मानसिक रूप से बन्धनमुक्त कर पायेगी। स्त्रियों को ऊँचा उठाने का दायित्व सम्पूर्ण व्यवस्था का है। इसके लिए सम्पूर्ण समाज को जागृत करने की आवश्यकता है, क्योंकि उनकी समस्यायें एकांगी न होकर समस्त समाज से जुड़ी हुई हैं। अतः उनके उत्थान से ही हमारा देश आगे बढ़ सकेगा। नारी मुक्ति का जो महल आज खड़ा दिखाई दे रहा है और भविष्य में भी जो महल बनेंगे, उनकी नींव की ईंट महात्मा गांधी और बाबा साहब अम्बेडकर ही हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

- *आर्थिक और औद्योगिक जीवन : उसकी समस्यायें एवं हल (भाग–1)– गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1961, पृष्ठ–26*
- *आर्थिक और औद्योगिक जीवन : उसकी समस्यायें एवं हल (भाग–1)– गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1961, पृष्ठ–33*
- *डा. भीमराव अम्बेडकर : सामाजिक न्याय के पुरस्कर्ता–डा. ब्रजलाल वर्मा, भावना प्रकाशन, कानपुर 1992, पृ. 344*
- *महात्मा गांधी के विचारः आर.के. प्रभु तथा यू.आर.राव, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, पहला संस्करण, 1994, पृ.–360*
- *महात्मा गांधी और भारत : डा. ज्योति सिंह, रामकटोरा, वाराणसी, 1995 पृ.–37*
- *डा. अम्बेडकर का आर्थिक चिन्तन–डा. ज्ञानचन्द्र खिमसेरा, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1995, पृ. 132*
- *महात्मा गांधी और भारत–डा. अमर ज्योति सिंह, रामकटोरा, वाराणसी, 1995 पृ. 36*
- *'दलित साहित्य और सामाजिक न्याय'–डा. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, समता प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ.–94*
- *भीमराव अम्बेडकरः व्यक्ति और विचार–विश्वप्रकाश गुप्त एवं मोहिनी गुप्ता, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1997, पृ.–71*
- *डा. भीमराव अम्बेडकरः व्यक्ति और विचार–विश्व प्रकाश गुप्त एवं मोहिनी गुप्ता, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1999, पृ.–117*
- *डा. अम्बेडकर : चिन्तन और विचार–डा. राजेन्द्र मोहन भटनागर, जगतराम एण्ड संस, नई दिल्ली, 2000, पृ. 113–114*
- *डा. अम्बेडकर : चिन्तन और विचार–डा. राजेन्द्र मोहन भटनागर, जगतराम एण्ड संस, नई दिल्ली, 2000, पृ. 113–114*
- *डा. अम्बेडकर : चिन्तन और विचार–डा. राजेन्द्र मोहन भटनागर, जगतराम एण्ड संस, नई दिल्ली, 2000, पृ.–73*
- *गांधी, नेहरू और टैगोर–प्रकाश नारायण नाराणी, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर 2002, पृ. –59*

- *औरत कल, आज और कल–आशासनी व्होरा, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2005, पृ.–50*
- *गांधीजी का आर्थिक चिन्तन–डा. ए.डी.एन. बाजपेयी, कॉलेज बुक डिपो, नई दिल्ली, पृ.–96*
- *महात्मा गांधीः जीवन और दर्शन– रामलाल विवेक, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. –120*

कलिकथा वाया बाईपास : मूल संवेदना

डा0 कृष्णकान्त चन्द्रा*

इस उपन्यास का शीर्षक अत्यन्त सारगर्भित है क्योंकि इस शीर्षक में उपन्यास की मूल संवेदना की छाया स्पष्टतः प्राप्त होती है। उपन्यास के लैप में साफ–साफ लिखा गया है कि 'बाईपास' उपन्यास का शायद 'बीज' शब्द है और वह इंगित करता है। आज के 'युगधर्म' की ओर–जो मूल समस्याओं से बचकर बगल से सुविधाजनक रास्ते निकालने का है। उपन्यास इस युगधर्म की विडंबना को किशोर बाबू के बाईपास आपरेशन के माध्यम से उजागर करता है, जो अंततः उन्हें उन्हीं चीजों की ओर ले जाता है जिन्हें उन्होंने अब तक बाइपास करा रखा था। इस तरह युग की कथा को इस उपन्यास में केन्द्रिय स्थान प्राप्त हुआ, स्वयं अलका जी अपने एक साक्षात्कार में कहती हैं कि – ''आप समझ लीजिए कि किशोर एक माध्यम हैं उत्तर 1947 की गाथा को कहने का।'' इस तरह उपन्यास में 1947 से लेकर 1997 (उपन्यास का प्रकाशन वर्ष) तक आजाद भारत के पचास वर्षों के जीवन की धड़कन को महसूस किया गया। दूसरे शब्दों में पचाास वर्षों के आजाद भारत के सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक संवेदनाओं को इसमें उकेरने की चेष्टा की गई है। लेकिन विवेच्य उपन्यास केवल 'उत्तर 1947 कथा' नहीं है। प्रवासी अनुभवों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति इस उपन्यास के तथ्य का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। किशोर बाबू अपने ग्रेट ग्रैंडफादर उर्फ रामविलास बाबू उर्फ बड़े बाबू की डायरी (1860 से 1926) के आधार पर एक विगत कथा लिखवाने लगते हैं। जो दूर देश से आने वाली चिड़ियों की तरह अपने जन्मभूमि से बहुत दूर हो गई एक जाति– मारवाड़ी जाति और एक शहर–कलकत्ता सांझी औपन्यासिक कथा को इस कृति में रचा गया है।

इतना ही नहीं विवेच्य उपन्यास में मारवाड़ियों की छवि सम्बन्धी कुछ

* *एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू पीजी कालेज, बाराबंकी,*
ई–मेल : dr.kkchandra@gmail.com

महत्त्वपूर्ण सवालों को उठाया गया है सबसे पहले यह कि मारवाड़ियों ने अंग्रेजों का साथ देकर देश के साथ धोखा किया है दूसरा यह कि ये लोग घोर अंधविश्वास धनलोलुप, काइंया और मानसिक–बौद्धिक रूप से पिछड़े होते हैं। रूढ़िवादिता, संकीर्णता, सूदखोरी और काइंयापन इस समुदाय की पहचान बन गया है। लेखिका ने मारवाड़ियों की इस पहचान को ध्वस्त करने का प्रसास किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस तरह इस उपन्यास में कलकत्ता के मारवाड़ी समाज की जीवन गाथा भी उभर कर आयी है।

संक्षेप में 'कलिकथा : वाया बाईपास' के वस्तुगत विश्लेषण के द्वारा उसके मूल–संवेदना का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है –

1. प्रवासी अनुभवों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति (सन् 1860 से 1940 तक)
2. स्वतंत्रता संघर्ष की गाथा (सन् 1940–1947 तक की राजनीति उथल–पुथल)
3. मारवाड़ी जाति की अस्मिता का सवाल
4. सामाजिक यथार्थवाद

1. प्रवासी अनुभवों की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति :

अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथा वाया बाईपास' की पृष्ठभूमि में है – कलकत्ता का मारवाड़ी समाज, जिस पर मरूभूमि के अकाल की गहरी छाया पड़ गई है। शायद इसीलिए ये लोग भविष्य के प्रति इतने आशंकित और अंधविश्वासी हो गये हैं। व्यापारी कौशल के धनी–महाजनी सभ्यता के प्रतिनिधि मारवाड़ी लोगों ने कलकत्ता में 'प्रवास' को स्थायी 'वास' बनाने का संकल्प लिया। इसमें अपनी जमीन से बिछड़ने का गहरा दर्द है जिससे जाहिर है स्त्रियों ने कहीं अधिक अनुभव किया क्योंकि पति बाहर चला जाता है अपने पीछे पत्नी बच्चों को छोड़कर। रामविलास जब तीन साल का था, उसी साल सन् 1863 में दिल्ली और कलकत्ते के बीच रेल लाइन बैठी थी। रेल लाइन के बनते ही रामविलास के पिता हैमिल्टन

के बुलावा पर कलकत्ते चले जाते हैं। गदर की लड़ाई में हैमिल्टन की जान रामविलास के पिता ने बचायी थी – जिस वजह से हैमिल्टन ताउम्र उसका एहसानमन्द हो जाता है। उसे पिता के कलकत्ते चले जाने पर रामविलास अपनी माँ के दर्द का अनुभव किया। जैसे माँ का अकेले बड़बड़ाना। 'ऊँटों के साथ घूमने वाले बन्जारों से भी गई–गुजरी जिन्दगी हो गई है हमारी। इन लोगों का परिवार तो कम से कम साथ तो रहता है हमारे नसीब में उतना भी नहीं। क्या होगा ऐसा धन कमाके? रूखी–सूखी खाकर आदमी नहीं जी सकता? 'परदेश की पूरी रोटी तै, घर की आध भली।'

रामविलास की माँ अपने पति को याद कर रोती रहती है और यह पद गाती है – ''आखड़िया झांई पड़ी पंथ निहारि–निहारि, जीभड़िया छाला पड्या आया नहीं गिरधारी।''

उसके इस रूदन और क्रंदन के पीछे प्रवासी अनुभवों का कड़वी सच्चाई के रूप में है। उसे अच्छी तरह याद है वह घटना जो उसके मौसी के साथ घटित हुई थी 'माँ की छोटी मौसी के पति शादी होते ही पूरब में दूर आसाम की तरफ रूपये कमाने निकल गये थे। मालवा में अफीम के कारोबार में उन्हीं दिनों उन लोगों को बड़ा भारी घाटा लगा था। एक बड़े कर्ज का भार माँ के मौसा पर उनके पिता छोड़कर मर गये थे। माँ के मौसा आसाम जाने के लिए मारवाड़ से मिर्जापुर तक पैदल गए थे। वहाँ से माल की नावों के साथ गंगा के रास्ते कलकत्ता और फिर पदमा नदी के रास्ते आसाम पहुँचकर वे लगातार पानी की जगह चाय पी–पीकर मलेरिया से लड़ते रहे। सोलह बरस बाद जब वे पिता का कर्ज चुकाने लायक पैसा इकट्ठा करके अपनी जान सलामत लेकर वापस देश लौटे, तब रास्ते में उन्हें अपनी पत्नी की अर्थी मिली। यदि गाँव का बूढ़ा ठाकरा न होता, तो न वे किसी को पहचानते और न कोई उनको पहचानता। तब वे विक्षिप्त से हो गये थे। रामविलास की माँ ने अपनी मौसी का तिल–तिलकर गलते देखा है।'

रामविलास के पिता की एक ख्वाहिश है कि भिवानी में एक बड़ी हवेली बनाएं, शायद इसीलिए वे कलकत्ते में दिन–रात काम करते हैं। एक

मिनट नहीं आराम करते, बस दिवाली के दस दिन पहले घर आते और लगातार तीन दिन सोये रहते। रामविलास अपनी माँ का अकेले जीवित लड़का है। इसलिए शायद उसे उसकी माँ बाहर नहीं जाने देना चाहती। लेकिन राम विलास का मन कलकत्ते जाने का करता और वह यह देखना चाहता कि रेलगाड़ी कैसी होती है। पिताजी खड़िया से पटिया पर बनाकर दिखाते हैं। रेलगाड़ी का दरवाजा संकरा होता है उसमें से अन्दर जाना मुश्किल होता है क्योंकि वह हमेशा ठसाठस भरा रहता है। रेलगाड़ी की खिड़की उससे भी छोटी होती है। पिताजी कहते हैं कि जब वे पहली बार रेल में गये तो इतनी भीड़ थी कि स्टेशन पर कुली ने उन्हें गठरी बनाकर खिड़की के रास्ते रेल के अन्दर फेंक दिया।' अब रामविलास 15 साल का हो चुका था। उसने चाचा लोगों के मुँह से यह जान लिया था कि पिताजी जमा किए हुए अपने चाँदी के सट्टे में कपूर की तरह उड़ गए। हैमिल्टन साहब ने पिताजी को बहुत समझाया कि फिर से कोशिश करें, नये सिरे से शुरूआत करें पर पिताजी का मन उखड़ गया तो उखड़ गया और वह फिर कलकत्ता नहीं गये।

इसी बीच स्वतंत्रता आन्दोलन का ज्वार पूरे भारत में उठ खड़ा होता है और कलकत्ता भी इससे अछूता नहीं रहता, बल्कि वह तो इसका केन्द्र सा बन जाता है। रामविलास का पुत्र केदार बंग–भंग के आन्दोलन में बढ़–चढ़ कर भाग लेता है। यहाँ फिर एक प्रवासी के सामने समस्या द्वंद्वात्मक रूप में खड़ी हो जाती है। रामविलास एक तरफ अपने अंग्रेज मित्र और सरंक्षक हैमिल्टन साहब से व्यक्तिगत रिश्ते और व्यापारिक कारणों से जुड़े हुए हैं। पर दूसरी ओर उनका पुत्र केदार अंग्रेज विरोधी है। रामविलास के समझ में नहीं आता है कि वह अपने पुत्र को परदेश से देश भेज देते हैं। यहाँ पुनः प्रवासी होने की असुरक्षित भावना रामविलास जैसे लोगों में है। इसलिए वे स्थानीय बंगाली जनता के साथ देश की स्वतंत्रता और संघर्ष में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने से हिचकिचाता है। अतएव 'कलि–कथा' में प्रवासी मारवाड़ियों की मानसिकता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है और इतिहास की सच्चाई को ईमानदारी से प्रकट किया गया है।

2. स्वतंत्रता संघर्ष की गाथा (सन् 1940–1947 तक)

इस उपन्यास में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के मुँह बोलते चित्र प्राप्त होते हैं वैसे तो उपन्यास में 1940 से 47 के मध्य की स्वतंत्रता प्राप्त की घटनाओं को प्रमुखता दी गयी है लेकिन इसमें 1905 के बंग–भंग और स्वदेशी आन्दोलन की स्थितियों का वर्णन भी आया। बंग–भंग के विरूद्ध आन्दोलन के दिन थे। पन्द्रह वर्षीय पुत्र केदार ने कलकत्ते के टाउन हाल में, लार्डकर्जन के खिलाफ हुई विराट जनसभा में शामिल होने से रामविलास घबड़ा गया था। तब हैमिल्टन साहब के कहने पर ही उसने केदार को कलकत्ते से एक तरह से निष्कासित कर भिवानी भेज दिया था। बंग–भंग के समय भिवानी के ही रामविलास के पुराने मित्र 'भारत मिल' अखबार के संपादक बालमुकुन्द गुप्त के लेखों पर मुग्ध होकर केदार ने उनसे मिलने कलकत्ता आने की जिद की थी, तभी रामविलास को खटका हो गया था कि इस लड़के ने अपनी पटरी बदल ली है। केदार की चिट्ठियों के अंत में 'वन्देमातरम्' लिखने की खतरनाक आदत के कारण पूरे चौदह वर्षों तक रामविलास भिवानी से आने वाली चिट्ठियाँ फाड़ता गया था। रामविलास ने हैमिल्टन के सुझाव पर उसकी शादी कर और उसके लिए समाज सेवा के लिए पैसे देकर उसका रास्ता बदलवाया। इतना करने के बाद भी जब केदार ने उन्नीस सौ ग्यारह में इंग्लैण्ड के सम्राट जार्ज पंचम ने दरबार के उत्सव को देखने जाने पर अपने पिता रामविलास को धिक्कारते हुए कड़ी चिट्ठी लिखी थी कि–''आप अंग्रेजों के जूते चाटने वाले टोडी बच्चों की गिनती में शामिल हो गए हैं।''

रामविलास की पुलिस कमिश्नर टैगर्ट से दोस्ती को लेकर केदार से दो सालों तक झगड़ा चला। केदार अपने किसी काम के सिलसिले में कलकत्ता आया था और उसने अपने दोस्तों से अपने पिता की अंग्रेजों के सबसे खूंखार पुलिस अफसर टैगर्ट से दोस्ती के किस्से सुने थे। गर्वनर की तरह साल क्रिसमस पर होने वाली 'लेवी' (पार्टी) के दिन पतली मोहरी की काली पैंट, चमकदार विदेशी ग्यासमेड जूते, लंबी काली विदेशी कपड़े की चपकन और सोने की मोटी जंजीर बंधी सोने की घड़ी पाकेट में डाले,

सफेद मूंछों और पीली पगड़ी वाले रूआबदार पिता के सामने केदार अपने हाथ से बुने स्वदेशी कपड़ों में खड़ा हो गया था – क्या आपने अपनी आत्मा को बिल्कुल बेच डाला है? आपको याद नहीं कि जब मैं पहली बार बारह साल की उम्र में आपके साथ रेल में दिल्ली से कलकत्ता आया था, तो इन अंग्रेजों ने हमारे साथ कैसा जानवरों जैसा बरताव किया था, आप भूल गए वह अपमान? यह जो टैगर्ट है न आपका दोस्त, आदमी नहीं, इन्सान का खून पीने वाला राक्षस है, राक्षस।

अतएव स्वदेशी आन्दोलन की विदेशी वहिष्कार और विरोध की मानसिकता जो पूरे भारत में जोर–शोर से फैल रही थी – का प्रतिनिधित्व केदार करता है। लेखिक की कलम से उस समय की स्थिति को यथार्थवादी ढंग से उभारा है। इसी प्रकार 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के समय भारतीयों की प्रतिक्रियाओं का रूपांकन भी लेखिका ने सफलतापूर्वक किया है। अमोलक का गांधी प्रेम और शान्तनु का सुभाष प्रेम दोनों ही कुछ मंद पड़ गए हैं। अमोलक अपने पिता की तरह गाँधी जी पर सौ प्रतिशत यकीन नहीं रख पाता वह तरह–तरह की बातें सुन डगमगा जाता है। दुनिया में लड़ाई शुरू होने पर प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारों से त्यागपत्र दिलवाने का क्या लाभ रहा? इससे तो कांग्रेस की ताकत कम ही हुई न? जब नाजियों से लड़ाई को कांग्रेस उचित मानती है, तब अंग्रेजी साम्राज्य का साथ ही क्यों नहीं दे रही है? क्या पता साथ देने पर बहुत से राजनीतिक लाभ मिल जाते। ऊपर गाँधी जी ने ऐसे वक्त में अंग्रेजों के लिए ज्यादा मुसीबत नहीं खड़े करने का निर्णय कर 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' का संकल्प करवाया है इससे क्या होनी जानी है। इस तरह की बहसें करने वालों की कोई कमी नहीं है। सन् इकतालीस की जनवरी में सुभाष बाबू कलकत्ता से फरार हो गये। सुभाष बाबू के कलकत्ते से गायब हो जाने के समय से ही शांतनु ढीला पड़ गया। सुभाष बाबू को भारतीय समाज की सारी समस्याओं का समाधान तानाशाही में दिखायी दे रहा था – यह बात शान्तनु के भी गले नहीं उतरी थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने के साथ ही भारत की राजनीतिक स्थिति में भी जटिलताएं पैदा होने लगी। कांग्रेस एवं कम्युनिस्टों के 'स्टैण्ड'

को लेकर पूरे भारत में बहस चल रही थी। भारत पर आक्रमण की संभावनाएँ बढ़ गई थी। कलकत्ता इस आक्रमण का निशाना था। तत्कालीन स्थिति का अच्छा वर्णन इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

मारवाड़ी जाति की अस्मिता का सवाल

कलिकथा वाया बाईपास घोषित रूप से किशोर बाबू की कथा है इसलिए किशोर बाबू इस उपन्यास के केन्द्र में हैं और उन्हीं को निमित्त बनाकर लेखिका कलयुग की गाथा को इसमें प्रस्तुत करती है। किशोर बाबू चूंकि एक मारवाड़ी है और इस उपन्यास में इनके पूर्वजों की कई पीढ़ियों का वर्णन–चित्रण हुआ है। इसलिए स्वाभाविक रूप से स्वयं किशोर बाबू और उनके पूर्वजों के माध्यम से मारवाड़ियों के जीवन की महागाथा भी इसमें प्रस्तुत हो जाती है। यही कारण है कि प्रथम दृष्टया यह उपन्यास मारवाड़ियों के जीवन गाथा का उपन्यास प्रतीत होता है। स्वयं लेखिका अलका सरावगी भी इस तथ्य से वाकिफ लगती है उनका कहना है कि –''कुछ समीक्षाएँ जो आयी हैं और जो बात मैंने सुनी और मैंने जो पढ़ी तो मुझे लगा कि कुछ लोग हैं जो इसे मारवाड़ियों के उपन्यास के रूप में देख सकते हैं, देख पा रहे हैं।'' यद्यपि अलका सरावगी इसे मारवाड़ियों का उपन्यास नहीं मानती, तथापि इसमें मारवाड़ी जीवन का एक बड़ा हिस्सा पिरोया हुआ है यहाँ एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ खड़ा होता है अलका जी जब यह कहती और मानती है कि यह उपन्यास केवल मारवाड़ी जाति का उपन्यास नहीं है, किशोर बाबू प्रसंगवश एक मारवाड़ी हैं।

यदि सिर्फ प्रसंगवश है तो स्वयं उनके कथनानुसार उन्हें इस उपन्यास की रचना करने के लिए मारवाड़ियों के इतिहास की अध्ययन करने की आवश्यकता क्यों पड़ी। उन्होंने अपने एक साक्षात्कार (हंस जनवरी 99) में कहा है – ''करीब अगस्त 96 से इस उपन्यास पर मैंने कार्य करना शुरू किया। दरअसल पहले यह एक कहानी के रूप में ही शुरू हुआ था, दो–तीन पन्ने लिखने के बाद इसमें जैसे एक व्यापक समय एक पूरा जीवन दिखायी पड़ा और मैंने लिखना बंद करके कुछ अध्ययन करना शुरू किया। सबसे पहली किताब जो उस दौरान मैंने पढ़ी, वो थी 'मारवाड़ी

फ्राम ट्रेडर्स टू इंडस्ट्रियालिस्ट'। दादी से मेरा बहुत लगाव था। इसलिए दादी की दादी के अन्दर जो उनकी दादी की पीढ़ियों पुरानी स्मृतियाँ रही होंगी, वो मुझे मिली थी – उनसे बहुत बातचीत करने के कारण।''

कहने का तात्पर्य यह है कि मारवाड़ी जीवन को समेटने के पीछे कोई न कोई दृष्टि लेखिका की अवश्य रही होगी। हाँ यह हो सकता है कि केवल मारवाड़ी जीवन को उभरना उनका उद्देश्य न रहा हो तो फिर उसके पीछे उनका कौन सा दृष्टिकोण था। वस्तुतः मारवाड़ी लोग व्यापारी रहे और एक व्यापारी के रूप में महाजनी सभ्यता के लक्षण उनके जीवन में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ते हैं। फलतः सूदखोरी और काइयाँपन उनकी पहचान बन गए हैं। लेखिका ने उनके इस पहचान को इस उपन्यास में प्रक्षालित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने साक्षात्कार (हंस जनवरी) में कहा है – ''मारवाड़ियों का एक रूपक या रूप बम्बईया फिल्मों में खींचा जाता रहा है। सूदखोर महाजन का पगड़ी बाँधे रूप, ऐसा मैंने फिल्मों में देखा है, असली जिंदगी में मारवाड़ी है नहीं, कम से कम कलकत्ते का मारवाड़ी वैसा नहीं है या वह उस स्थिति से काफी दूर आ गया है।''

इस प्रकार मारवाड़ियों की एक बनी बनायी पहचान के खिलाफ लेखिका ने उनकी एक नयी पहचान या अस्मिता की तलाश में है। इसके लिए दो घटनाओं को प्रमुखता के साथ चुना गया। पहली छवि मारवाड़ियों की यह है कि मारवाड़ियों में अपने व्यापारिक हितों के ध्यान में रखते हुए अंग्रेजों का साथ दिया और देश के साथ गद्दारी किया। लेखिका ने किशोर और शान्तनु के मध्य वाद–विवाद या विचार–विमर्श में घटना को बतलाया है। शान्तनु कहता है कि मारवाड़ी आजादी की लड़ाई में भाग नहीं ले सकते, वे इतने दब्बू और डरपोक हैं कि न जेल जा सकते हैं और न ही पुलिस के डंडे खा सकते हैं – हर समय उन्हें जान–माल की ही फिक्र रहती है। इसलिए वे ज्यादा से ज्यादा गाँधी की बकरी के दूध पीने का इतंजाम करते हुए और चरखा कातते हुए उनके आगे–पीछे घूम सकते हैं। इतना ही नहीं शान्तनु का विचार यह है कि – ''मीर जाफर ने अमीचंद और जगत सेठ से मिलकर गद्दारी नहीं की होती तो सिराजुद्दौला तो फोर्ट विलियम पर कब्जा कर ही चुका था।'' किशोर बाबू को शान्तनु की

ये बात कांटे की तरह चुभ जाती है। मारवाड़ी जाति पर लगाये गये आरोप से उन्हें बहुत दुख होता है। उनकी इस मनःस्थिति का लेखिका ने इस प्रकार वर्णन किया है – किशोर चुप था। उसके अन्दर जैसे कहीं एक फांस गहरी चुभ रही थी। उस दिन वह बहुत खोया–खोया रहा। किशोर यह जानना चाहता था कि अमीचन्द किस जाति का था। उसके मन में जगत सेठों के प्रति भी जिज्ञासा थी। उसने लाइब्रेरियन सत्यपाल जी से पूछा भी कि क्या जगत सेठ मारवाड़ी थे। सत्यपाल जी ने बताया कि हाँ वे मारवाड़ी ओसवाल थे। इस सच्चाई ने किशोर बाबू को बहुत दुखी कर दिया लेकिन सत्यपाल जी ने उसे समझाया कि ताकत और पैसों के पीछे पागल लोगों की कोई अलग जाति नहीं होती। वे सब एक ही जाति के होते हैं। वे अनादिकाल से अपने को बेचते आए हैं और हमेशा बेचते रहेंगे। मैं समझ रहा था कि तुम सुभाष बाबू के कारण सिराजुद्दौला के बारे में जानना चाहते हैं लेकिन देख रहा हूँ कि तुम्हें कोई दूसरी ही बात चुभ रही है। क्या सबसे पहले बंगालियों ने ही अंग्रेजों को यहाँ पाँव जमाने में मदद नहीं की थी? तुम अपने को स्वयं पहचानो। किसी दूसरे की धारणाओं से क्यों परेशान हो रहे हो?

4. सामाजिक यथार्थवाद

उपन्यास में यथार्थवाद के जो रूप उपलब्ध होते हैं उनमें प्रथम ऐतिहासिक यथार्थवाद है। यह यथार्थवाद वह रूप है जो अतीत युगीन जीवन और परिस्थितियों से सम्बद्ध होता है। यह उन सभी आन्दोलनों और विकासशील परिस्थितियों का निरूपण करता है जो वर्तमान युग की पीठिका का निर्माण करती है। और यथार्थवाद का दूसरा रूप सामाजिक यथार्थवाद के रूप में मिलता है जो एक तरह से हमारे समय की सशक्त विधा है। साहित्यकार जिस सामाजिक परिवेश में पुष्ट होते हैं उसी सामाजिक परिवेश को वे साहित्य में चित्रित कर सकते हैं। इसमें युग सत्य लेखक के साथ–साथ चलता है चूंकि उपन्यास एक यथार्थवादी विधा है और कहना न होगा कि सभी बड़ी कथा रचनाओं के पीछे यथार्थवाद मूल प्रेरक शक्ति के रूप में काम करता है। कलि कथा वाया बाइपास एक ऐसी रचना है जिसमें मारवाड़ी समाज की धड़कन के साथ–साथ अपने समय

और समाज की विभिन्न घटनाओं बदलाओं का संकेत, तो कहीं मुखर चित्रण प्राप्त होते हैं। जैसे अंधविश्वास, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, अकाल, भाग्यवाद, पीढ़ियों का द्वन्द्व, साम्प्रदायिकता, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बढ़ता वर्चस्व, भूमण्डलीकरण, अपसंस्कृति, अकेलापन, औरत की स्थिति, गरीबी–भुखमरी, परिवार व्यवस्था, पित् सत्तात्मक परिवार व्यवस्था, अकाल और धार्मिक पाखण्ड जैसे तमाम मुद्दे इस उपन्यास के परिप्रेक्ष्य को विस्तार देते हैं।

इस उपन्यास में बड़ी तेजी से फैल रही अपसंस्कृति का भी प्रभाव दर्शाया गया है और आज कैसे अपनी संस्कृति भी फैशन और बिकाऊ होती जा रही है। ''किशोर बाबू को इसका पता भी अपने घर में ही चलता है जब वे देखते हैं कि उनके बच्चे उनके अंग्रेजी में गीता पढ़ने और उस पर कुछ लिखने के बतौर सांस्कृतिक फैशन ले रहे हैं। उनके बच्चों के बच्चों के ये हाल है कि जब तीन साल की नातिन से पूछा गया कि वह बाएँ हाथ से क्यों खा रही है तो उसने जवाब दिया। 'मेरी मर्जी'। ऐसी स्थिति में आजादी के बाद के दशकों के बारे किशोर बाबू का यह कहना कितना सटीक लगता है–''कई दशकों बाद एहसास होता है कि जब शत्रु का चेहरा खोजने पर अपना ही चेहरा शीशे में नजर आने लगता है तो सारे सपने धुंधला जाते हैं यहाँ तक कि कोई सपना बाकी नहीं बचता। बस अपना पेट बचता है जो दिन–ब–दिन बढ़ती जरूरतों, इच्छाओं और चीजों के साथ बढ़ता जाता है और किसी तरह पूरा नहीं भरता।''

इस प्रकार यह उपन्यास मूल संवेदना की दृष्टि से एक वृहत्तर जीवन फलक को समेटने वाला उपन्यास है।

संदर्भ ग्रन्थ

- *कलिकथा : वाया – बाईपास, पृ0 सं0 26*
- *वही, पृ0 सं0 26*
- *वही, पृ0 सं0 30*
- *वही, पृ0 सं0 48*
- *हंस – जनवरी, 1999*
- *कलिकथा : वाया – बाईपास, पृ0 सं0 51*
- *वही, पृ0 सं0 156*

नई कहानी आन्दोलन और उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि

मनोज कुमार शुक्ल*

सन् 1940 के बाद भारतीय परिप्रेक्ष्य में कुछ विशेष घटनाएं घटी जिसका भारतीय जनमानस पर सीधा असर पड़ा जैसे द्वितीय विश्वयुद्ध, बंगाल में अकाल, कलकत्ता तथा पंजाब के नरसंहार, देश विभाजन, गणतन्त्र की स्थापना आदि। इनमें सबसे प्रमुख घटना जो घटी वह भारत की आजादी का मिलना था, जिसने देशवासियों में नवजीवन, नई उमंग, नई आशाओं का संचार किया, लेकिन इसी के समान्तर गरीबी, बेरोजगारी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार आदि का भी लोगों को सामना करना पड़ा। इससे मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग में एक खास वर्ग के प्रति शासक वर्ग के प्रति असन्तोष भी पैदा हुआ।

ऐसे समय ने साहित्यकारों को अपने दृष्टिकोण बदलने का अवसर दिया। साहित्य की हर विद्या में नवीनता लाने का प्रयास किया गया। कविता नई कविता की तरफ, गीत नवगीत की तरफ, आलोचना नई आलोचना की तरफ बढ़ी तो कहानी भी नई कहानी की दिशा में बढ़ी, कहानीकारों ने कहानी के पुराने ढर्रे को बदलना आवश्यक समझा। अब कहानी आदर्शवाद से यथार्थवाद की तरफ उन्मुख हुई। नये मूल्यों की तरफ कहानीकारों की आस्था बढ़ी। विषय और कला की दृष्टि से कहानियों में नयापन आया, लेकिन यह सब एकाएक नहीं हुआ, बल्कि इसके लिए कहानीकारों ने आन्दोलन चलाया जिसे कहानी जगत में कहानी आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। इन विभिन्न आन्दोलनों को निम्न रूप से समझा जा सकता है।

नई कहानी

1950 ई. के आस–पास कहानी के क्षेत्र में एक आन्दोलन चलता है, जिसे नई कहानी आन्दोलन नाम दिया गया। इसके नामकरण का श्रेय दुष्यंत कुमार को जाता है। कुछ विचारकों के अनुसार नामवर सिंह ने इसका नामकरण किया। नई कहानी आन्दोलन के प्रवर्तक राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, निर्मला वर्मा और मोहन राकेश थे। इसकी पृष्ठभूमि में कहानी पत्रिका का उदय होना था। कहानी पत्रिका जिसका प्रकाशन 1938 ई. में शुरू हुआ था। कुछ कारणों के चलते 1942 ई. में

* *शोध छात्र (हिन्दी), जे.एल.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी, उत्तर प्रदेश।*

यह बंद हो गयी थ। परन्तु 1954 में इसका पुनः प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके जनवरी 1954 के अंक में कहा गया कि– ''आज के हिन्दी भाषा के जीवन की विविधता और समस्याओं की जटिलता के हर पहलू को हिन्दी कहानी ने अपने में आवेष्टित कर लिया है। शिल्प सौन्दर्य और विषयवस्तु दोनों ही में आज की कहानी बारह वर्ष पहले की हिन्दी कहानी से कहीं आगे है।'' इस तरह नई कहानियों की वैचारिक पृष्ठभूमि में उसके उन नायकों के कथनों से समझा जा सकता है। राजेन्द्र यादव के अनुसार– ''कथाकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है। व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अन्तर्द्वन्दों तथा व्यवहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट–प्रक्रिया के रूप में पाना उसका लक्ष्य है।'' कमलेश्वर के अनुसार– ''पुरानी और नई कहानी के बीच बदलाव का बिन्दु है– नई वैचारिक दृष्टि।'' मार्कण्डेय के अनुसार– ''नई कहानी से हमारा मतलब उन कहानियों से है, जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण है, जो जीवन के लिए उपयोगी है और महत्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी न किसी नए पहलू पर आधारित है।''

जटिल जीवन की यथार्थ स्वीकृत, व्यक्ति की प्रतिष्ठा, छिछली भावुकता का हास, मध्यवर्गीय जीवन चेतना, आधुनिकता बोध, सांकेतिकता, नवीन शिल्प प्रयोग नहीं कहानी के कुछ विशिष्ट प्रतिमान है। जिन पर नई कहानी का गठन किया गया। अमरकांत, उषा, प्रियंवदा, धर्मवीर भारती, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडरी, भीष्म साहनी, नई कहानी आंदोलन के अन्य सक्रिय सदस्य रहे।

अकहानी

अभी–अभी नई कहानी की प्रतिष्ठा हुई ही थी कि नई कहानी का विरोध भी शुरू हो गया। नई कहानी के विरोध में यह अकहानी आन्दोलन चला। एक तरफ तो यह नई कहानी की जड़ता तोड़ने का आन्दोलन था, लेकिन दूसरी तरफ स्वयं को प्रतिष्ठित करने का लालच था। गंगा प्रसाद विमल ने सर्वप्रथम समकालीन कहानी आन्दोलन चलाया, लेकिन शीघ्र ही वे नई कहानी के विरोध में 1960 ई. में अकहानी आन्दोलन को लेकर उपस्थित हुए। यद्यपि इसमें जगदीश चतुर्वेदी, गंगा प्रसाद विमल से अधिक सक्रिय थे। अन्य सहयोगियों में रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, सुधा अरोड़ा, ज्ञान रंजन, रमेश बक्षी, श्रीकान्त वर्मा, विजय मोहन सिंह, विश्वेश्वर आदि थे।

गंगा प्रसाद विमल अकहानी को आन्दोलन न मानकर एक दृष्टि मानते है,

जो कहानी विधा के स्वीकृत मूल्यों के निषेध पर बल देती है। इसके स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते है– ''अ–कहानी का संदर्भ इस दृष्टि से आन्दोलन नहीं है, कोई मंच नहीं है तथा कोई विशेषण भी नहीं है। मूल्यांकन की दृष्टि से कथा के रचना–विधान का पृथक्तव स्पष्ट करने के लिए ही अ–कहानी का नामांकन किया गया हो–यह भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। वस्तुतः अ–कहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी तरह के मूल्य स्थापन का अस्वीकार है।''

सचेतन कहानी

नई कहानी की आत्मपरकता और अ कहानी के निषेध परक सिद्धान्त के विरोध में सन् 1964 ई. में महीप सिंह ने सचेतन कहानी आन्दोलन चलाया। इसका प्रारम्भ आधार पत्रिका के 1964 में निकले सचेतन कहानी विशेषांक से माना जाता है। इसी विशेषांक में इस आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते है कि– ''सचेतन एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। कड़ुए घूंटों से घबड़ाकर जीवन से भाग खड़े होने की बात वैयक्तिक रूप में मानव इतिहास में अनेक बार दोहराई गई है और हर बार किसी न किसी प्रकार का दार्शनिक–बौद्धिक आधार देकर उसके औचित्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। परन्तु मनुष्य की प्रवृत्ति जीवन से भागने की नहीं रही है। जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है।''

इस आन्दोलन के अन्य सहयोगियों में कमल जोशी, मधुकर सिंह, योगेश गुप्त, वेदराही, हिमांशु जोशी, मनहर चौहान आदि थे।

सहज कहानी

सन् 1968 ई. में नई कहानियॅा पत्रिका का स्वामित्व और संपादन कार्य अमृतराय ने अपने जिम्मे लिया। इसी पत्रिका में संपादकीय पृष्ठ पर वे सहज कहानी शीर्षक के अन्तर्गत लिखने लगे। यही से सहज कहानी आन्दोलन की शुरूआत मानी गयी। परन्तु कोई नवीन अवधारणा न दे पाने के कारण और अधिक समर्थन न मिल पाने के कारण यह आन्दोलन अधिक आगे तक नहीं जा सका। सहज कहानी के लिए उन्हे केवल सुधा अरोड़ा का समर्थन मिला। यद्यपि सहज कहानी की व्याख्या करते हुए वे लिखते है कि– ''सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, बनावट नहीं है, ओढ़ी हुई पद्धति या मुद्रादोष नहीं है, आइने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने अंग–प्रत्यंग को अलग–2 कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है।''

बाद में आठवे दशक में डॉ. सुशील कुमार फुल्ल द्वारा इसे पुनर्जीवित किया गया, लेकिन वे भी इसे बहुत आगे नहीं ले जा सके।

समान्तर कहानी

अकहानी के विरोध में कमलेश्वर ने 1971 ई. में एक आन्दोलन चलाया जिसे समान्तर आन्दोलन कहा गया। नई कविता के बाद से सबसे बड़ा आन्दोलन था और चर्चित भी था। कमलेश्वर का नई कविता आन्दोलन में खास अनुभव रहा था। समान्तर कहानी की वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए वे कहते है कि– ''समान्तर से उनका तात्पर्य कहानी को आम आदमी के जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं के समानान्तर प्रतिष्ठित करने का है।'' इसलिए उन्होंने कहानी के क्षेत्र में समाज और जीवन को व्यापक रूप में ग्रहण करते हुए उसकी विभिन्न स्थितियों, विषमताओं एवं विद्रूपताओं को अंकित करने का लक्ष्य घोषित किया।

अरविन्द, आशीष सिन्हा, इब्राहिम शरीफ, कामतानाथ, जितेन्द्र भाटिया, दामोदर सदन, निरूपमा सेवती, मधुकर सिंह, सतीश जमाली, से.रा. यात्री, रमेश उपाध्याय आदि समान्तर आन्दोलन के सक्रिय कहानीकार रहे। यद्यपि इस आन्दोलन को कहानी आन्दोलन से अधिक कमलेश्वर की महत्वाकांक्षा पूर्ति का साधन के रूप में देखा गया।

जनवादी कहानी

सन् 1977 ई. में दिल्ली विश्वविद्यालय में जनवादी विचारमंच की स्थापना हुई। इसी मंच के तले 1982 ई. में प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ, जिसमें जनवादी कहानी आन्दोलन की रूपरेखा तय की गयी। जनवादी लेखन के पीछे मार्क्सवादी विचारधारा ने ठोस आधार प्रदान किया। इसकी पृष्टि में चन्द्रबली सिंह जनवाद को परिभाषित करते हुए कहते है कि– ''जनवाद एक व्यापक जन समूह का स्टैण्ड प्वाइन्ट है, दृष्टिकोण है–जिसमें कि राष्ट्रीय पूॅजीपति वर्ग से लेकर मजदूर, किसान सब आते है, उनके हितों से जुड़ा हुआ यह दृष्टिकोण है।'' जनवादी कहानी लेखन में मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, अमरकांत, शेखर जोशी, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय, रमेश बतरा, हेतु भरद्वाज, नमिता सिंह, असगर वजाहत, धीरेन्द्र अस्थाना, उदय प्रकाश आदि कहानीकार उल्लेखनीय है।

सक्रिय कहानी

सन् 1979 ई. में राकेश वत्स ने मंच पत्रिका के माध्यम से सक्रिय कहानी

आन्दोलन का सूत्रपात किया। सक्रिय कहानी की वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए राकेश वत्स ने कहा है– ''सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है कि चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी, उस समझ और अहसास की कहानी जी आदमी को बेबसी, निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर ले ली है।''

इस आन्दोलन का प्रभाव भी सीमित रहा और बहुत सफल नहीं रहा। रमेश बतरा, चित्रा मुदगल, सच्चिदानन्द धूमकेतु, सुरेन्द्र सुकुमार, धीरेन्द्र अस्थाना आदि कहानीकारों ने अवश्य इस आन्दोलन का सहयोग और समर्थन किया था।

इस तरह हम देखते है कि इन कहानी आन्दोलनों ने कहानी के परम्परागत ढॉचे को तोड़ने का कार्य किया, इसमें कुछ सफल रहे, कुछ असफल। लेकिन कहानी विधा को जीवन्त और बहमुखी बनाने में इनकी महती भूमिका रही।

संदर्भ ग्रन्थ

- *हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचन्द्र शुक्ल*
- *हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय खण्ड)–डॉ. गणपति चन्द्र शुक्ल*
- *हिन्दी कहानी का विकास–मधुरेश*
- *कहानी सप्तक–डॉ सुरेश प्रसाद सिंह, प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी*
- *कहानी संचयन–डॉ. शार्दूल विक्रम सिंह, डॉ. विजय कुमार वर्मा*

अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र के साहित्य में राष्ट्रीय भावना

डॉ0 अम्बरीष कुमार शास्त्री*

सारांश

विश्व की प्राचीनतम भाषा संस्कृत भाषा है अन्य सभी भाषाएं संस्कृत भाषा का ही आश्रय पाकर अस्तित्व में आ सकी हैं। ये सभी देशी विदेशी विद्वान एक स्वर में स्वीकार कर चुके हैं। भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राणतत्व संस्कृत भाषा में रचित साहित्य में विद्यमान हैं यही भारत की अनुपम पूंजी है इसी भाषा और साहित्य के बलबूते ही भारत जगतगुरू जैसी महान पदवी को प्राप्त किया था संस्कृत साहित्य का यदि वैश्विक परिदृश्य में आकलन करें तो निःसंदेह विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान संस्कृत साहित्य मे उद्भाषित प्रतीत होता है। वैदिककाल से लेकर वर्तमान समय तक संस्कृत वाङमय में राष्ट्रप्रेम, विश्वहित, मानव कल्याण, की भावना आदि जैसे विषय ही साहित्य सर्जना के मुख्य बिन्दु रहें हैं।

अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति, भाषाप्रेम, तथा आपसी सामांजस्य की भावनाओं को उद्दीप्त किया जाता है। वह जातिपांति, धर्म, मजहम आदि की संकीर्णता को तोड़कर परस्पर समन्वय की भावना से ओत प्रोत दिखलायी पड़ते हैं उन्हें भारतीय संस्कृति, भारतीय संस्कारों व भारतीय संस्कृति ही राष्ट्रकल्याण का ही नहीं बल्कि विश्व कल्याण का अनुपम सन्देश देती है।

वास्तव में यह यदि कविवर डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद मिश्र के संस्कृत साहित्य पर दृष्टिपात करें तो कवि की लेखनी केवल राष्ट्रीय समस्याओं के लिए भी जागृत दिखाई देती हैं। आज भारत की ही नहीं प्रत्युत समस्त विश्व अनेक समस्याओं से जूझता नजर आता है सम्पूर्ण विश्व में आतंकवाद, बेकारी, भुखमरी, और पर्यावरण जैसी समस्याओं के ग्रस्त त्रस्त है डॉ0 मिश्र ने इन समस्याओं की ओर अपने साहित्य के माध्यम से सबका ध्यान आकर्षित करने का सहज प्रयास किया है और यह नितान्त सच है कि

* *एसो0प्रो0 एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कालेज, बाराबंकी।*

भारत को ही नहीं अपितु पूरे विश्व को ऐसे साहित्यकारों की आवश्यकता है कि जिनके द्वारा समाज के प्रत्येक वर्ग को दिशा ज्ञान प्राप्त हों।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुः उन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरूवै नमः।।

विश्व की प्राचीनतम भाषा संस्कृत भाषा है अन्य सभी भाषाएं संस्कृत भाषा का ही आश्रय पाकर अस्तित्व में आ सकी हैं। ये सभी देशी विदेशी विद्वान एक स्वर में स्वीकार कर चुके हैं। भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राणतत्व संस्कृत भाषा में रचित साहित्य में विद्यमान हैं यही भारत की अनुपम पूंजी है इसी भाषा और साहित्य के बलबूते ही भारत जगतगुरू जैसी महान पदवी को प्राप्त किया था संस्कृत साहित्य का यदि वैश्विक परिदृश्य में आकलन करें तो निःसंदेह विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान संस्कृत साहित्य मे उद्भाषित प्रतीत होता है। वैदिककाल से लेकर वर्तमान समय तक संस्कृत वाङमय में राष्ट्रप्रेम, विश्वहित, मानव कल्याण, की भावना आदि जैसे विषय ही साहित्य सर्जना के मुख्य बिन्दु रहें हैं।

अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति, भाषाप्रेम, तथा आपसी सामांजस्य की भावनाओं को उद्दीप्त किया जाता है। वह जातिपांति, धर्म, मजहम आदि की संकीर्णता को तोड़कर परस्पर समन्वय की भावना से ओत प्रोत दिखलायी पड़ते हैं उन्हें भारतीय संस्कृति, भारतीय संस्कारों व भारतीय संस्कृति ही राष्टकल्याण का ही नहीं बल्कि विश्व कल्याण का अनुपम सन्देश देती है।

कविवर प्रो0 राजेन्द्र मिश्र की लेखनी भी भारतीय संस्कृति में मूल्यों का निर्वाहन करती हुई दिखती है।

विश्वकल्याणे मतिः विश्वनिर्माणे रतिः
भारतीयो भारतीयों भारतीयोध्हम
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम।
लोकतन्त्रस्थापने सर्वोदये नित्यम्
विश्वशान्तौ विश्वबन्धुत्वे च यत्सत्यम्
देश एषोऽग्रेसरः विश्वमंगल शेखरः

भारतीयो भारतीयो भारतीयोघ्हम
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम् ।।1।।

समाज के दुर्बल, पीड़ित वर्ग की पीड़ा को देखकर आपका हृदय विचलित हो जाता है तथा उस पीड़ा का अनुभव करते हुए कहते है कि–

तिमिंगलो निगरति लघुमीनं
धनदो जठरे क्षपयति दीनम्
मरूसिकतायां छलयति हरिणं, नितराम सलिलतृषा
म्रियते जिजीविषा।।2

बड़ी मछली छोटी मछलियों को खा रहीं है धन कुबेर लोग गरीबों का धन पचा ले रहें हैं। मरूभूमि की बालू पानी का भ्रम पैदा कर रही है परन्तु प्यास नहीं बुझा रही है। जीवन की आशा का यही परिवेश है।

देववाणी संस्कृत कोई सामान्य भाषा नहीं प्रत्युत महिमामय भारत राष्ट्र का वाङमय विग्रह है।

यत्सम्भवे परिणय मरणे च तुल्य
संस्कारकर्मणि सदा निखिलेऽपि राष्ट्रे।
प्रोच्चार्यते सविनयं ननु संस्कृत तद्
देवार्चितं दिशतु में नवसुप्रभातम।।3।।

अभिराज डॉ0 मिश्र का राष्ट्रीय परिवेश अत्यन्त विशाल है जिसे प्राप्त करना सामान्य मनुष्यों के लिए कठिन ही नही बल्कि दुरूह है।

संस्कृत साहित्य एवं कविता में प्राचीन काल से ही राष्ट्रवादी स्वर की हुंकार सुनाई देती है इसकी प्राचीनतम सीमा वेद का स्पर्श करती है। मन्त्रो अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है। जिसमें पृथ्वी को जीवन्त ममतामयी माता रूप के अवलोकित किया गया है।'

''माता भूमि : पुत्रोऽहं पृथिव्याः''

अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और हम पृथ्वी के पुत्र है इस तरह का उद्घोष अथर्ववेद में प्राप्त होता है।

राष्ट्रप्रेम की गहरायी का दर्शन डा0 राजेन्द्र मिश्र के उन गीतों में हम पाते है जहां कवि हृदय की सम्पूर्ण आस्था एवं निष्ठा के साथ बार–बार भारत की माटी में जन्म लेने की प्रार्थना परमब्रह्म परमेश्वर से करता है। भारत जहाँ गेहूँ धान की पकी बालियां खेतों में हवा से झूमती है जहां गंगा, यमुदा, नर्मदा, शतजल, कावेरी, तुंगभद्रा जैसी पवित्र नदियां प्रवाहित होती हैं और जहां आकाश से मन्त्रणा करते हिम शिखर मन को आकर्षिक कर लेते हैं। ऐसे ही पवित्र भारत देश के किसी भी स्थान पर जन्म लेने के लिए लालसा पायी गयी है। जो राष्ट्रभाषा भावना का अनुपम उदाहरण है :–

विराजन्तामनन्ताः शालयो नतमंजरी पुंजाः
सुभोभन्तां वनान्ता दुष्प्रवेशलसन्निचुलकुंजाः।
भवेदिह मृर्न्तिकार्या विलुठनं भूमोऽपि शतवारम्।
परं स्याद् भारतेः।।
वहेन्मम जन्पदे गंगा तरणिजा किंच कावेरी
शतद्रुर्नर्मदा भद्राऽथवा् संस्पृष्ट श्रृगेंरी
भवेदिह निम्नगायां गाहनं भूयोऽपि शतवारम्।
परं स्याद् भारतेः।।
कलिङ्गो मेऽस्तु बंगाऽथवाऽऽन्ध्र केरलोवापि।
मरूर्वा गुर्जरो वा कोसलो ननु मेकलश्चापि
भवेदिह नीवृति क्वप्यिन्वितिः भूयोऽपि शतवारम्
परं स्याद् भारतेः ।।5।।

इस तरह समस्त गीत राष्ट्रीय आस्था के गीत हैं। इन गीतों में भारत राष्ट्र की बहुरंगी संस्कृति तथा संवेदनात्मक प्रगाढ़ एकता के प्रति अटूट निष्ठा व्यक्त की गयी है डॉ0 मिश्र स्वतन्त्र भारत के विश्व वन्दित रूप के प्रति नमन करते है।

गंगा पुनाति भालं रेवापि मध्यदेशम्
वन्दे सदा स्वदेशम् एतादृशं स्वदेशम्।।
गायन्ति यस्य देवाः शुभगीतकान् नित्यम्

सर्वे भवन्तु सुखिनों यस्यै तदैव कृत्यम
अभय प्रदोपदेशाः शमयन्ति पापलेशम''
अद्यापि यस्य नीति र्विशमापयत्यनल्पम
उद्‌घोष्य विश्वशान्तिं भावं च मित्रकल्पम्
वन्दे ध्वज त्रिवर्ण वन्दे स्वतन्त्र केशम्
वन्दे सदा स्वदेश एतादृशं स्वदेशम् ।। 6।।

वास्तव में यह यदि कविवर डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद मिश्र के संस्कृत साहित्य पर दृष्टिपात करें तो कवि की लेखनी केवल राष्ट्रीय समस्याओं के लिए भी जागृत दिखाई देती हैं। आज भारत की ही नहीं प्रत्युत समस्त विश्व अनेक समस्याओं से जूझता नजर आता है सम्पूर्ण विश्व में आतंकवाद, बेकारी, भुखमरी, और पर्यावरण जैसी समस्याओं के ग्रस्त त्रस्त है डॉ0 मिश्र ने इन समस्याओं की ओर अपने साहित्य के माध्यम से सबका ध्यान आकर्षित करने का सहज प्रयास किया है और यह नितान्त सच है कि भारत को ही नहीं अपितु पूरे विश्व को ऐसे साहित्यकारों की आवश्यकता है कि जिनके द्वारा समाज के प्रत्येक वर्ग को दिशा ज्ञान प्राप्त हों।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- *मधुपर्णी – डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–46*
- *श्रुतम्भरा – डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–46*
- *प्रभात मंगलशतकम – डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–46*
- *अथर्ववेद – डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–46*
- *मधुपर्णी – डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–43*
- *वाग्वघूटी – डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, पृष्ठ–12*

शासकीय सेवा से सेवानिवृत्त वृद्धजनों की मनो–सामाजिक समस्यायें तथा वृद्धों के सरंक्षण हेतु किए गए शासकीय प्रयास

अंजना सिंह पाल*, डॉ० सरिता कुशवाहा, डॉ0 मुहम्मद नईम*****

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति होने के साथ–साथ अपने में अनेकानेक धरोहर समेटे हुए है, एक ओर जहाँ यूनान, मिश्र, रोम आदि की प्राचीन संस्कृति इतिहास बना चुकी है, वहीं दूसरी ओर हमारी संस्कृति काल के विभिन्न हिस्सों से गुजरती है 'हम आज' अपने मूल में हमारी गौरवशाली सामाजिक प्रणाली में संयुक्त परिवारों का चलन एवं वृद्धों का संरक्षण एक अनुपम विशेषता है। वास्तव में, हमारी इस अद्‌भुत संस्कृति के जन्मदाता और संरक्षक हमारे वृद्धजन है, जिनकी छत्रछाया में हमारा विकास होता है

परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य अंग है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में जन्म से मृत्यु तक अनेकों अवस्थायें आती है, परन्तु जीवन के अन्तिम चरण में वृद्धावस्था सर्वाधिक महत्पूर्ण हो जाती है, जिसमें व्यक्ति को अनेकों परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ जूझना तथा समझौता करना पड़ता है। भारतीय समाज के वर्तमान अनुमानित आँकड़ें संकेत देते है कि भारत एक ओर वृद्धों का देश बताया जा रहा है और समाज में आ रहे तीव्र परिवर्तनों के कारण परिवार में साठोत्तर वृद्धों की देखभाल की क्षमता घटती जा रही है और वे भी शिथिल पड़ते जा रहे है। जो साठोत्तर वृद्धों की देखभाल का समर्थन करते है।

भारतीय संस्कृति में कहा जाता है कि बौद्धिक संस्कृति के प्रारम्भ काल से ही वृद्धों को परिवार में सम्मानित स्थान देने के लिए अनेकों

---

* *शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म. प्र.)*

** *सहायक आचार्य, समाजशास्त्र, श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म. प्र.)*

*** *सहायक आचार्य, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर समाज विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)*

व्यवस्थायें बनाई गई है। इनमें संयुक्त परिवार के समस्त धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक अधिकार वृद्धजनों में सौंपकर दूसरे सदस्यों को उनके निर्देशों के अनुसार कार्य करना एक सामाजिक प्रतिमान बना दिया गया था। इस व्यवस्था में भारतीय समाज में वृद्धजन को आर्थिक एवं भावनात्मक सुरक्षा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रो. वेन्जामिन श्लॉस ने लिखा है कि–

"वृद्धावस्था मानव जीवन की एक गम्भीर जटिल एवं सार्वभौमिक समस्या है जो एक बीमारी के समान है और जो प्रत्येक व्यक्ति को लगती है। पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति की चमक दमक के प्रभावों के तीव्र परिवर्तनों के इस दौर में परिवारों की संरचना एवं उनके प्रकार्यो में हो रहे परिवर्तनों के फलस्वरूप वृद्धों की सहायता एंव सुरक्षा प्रदान करने वाले कार्य पूर्व की भांति नही कर पा रहे है। यह सत्य है कि वृद्धों और परिवारों के मध्य सफल सामजस्य नही हो पा रहा है। सम्प्रति वृद्धों का जीवन समस्याग्रस्त दूभर एवं नारकीय हो रहा है। सत्य है कि वृद्धावस्था में शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता के साथ–साथ परिवार की संरचना में परिवर्तन वृद्धों की सत्ता एवं उनके प्रभाव में कमी, जर्जर शरीर वाले इन वृद्धों की उपेक्षा, उनके साथ दुर्व्यवहार, मारपीट, परिवार के सदस्यों द्वारा अन्तः क्रियायें न करना, पारिवारिक गतिविधियों से उनके लगाव में कमी आने के लिये उत्तरदायी है।

वह व्यक्ति को परिवार एवं सामाजिक समायोजन, एकाकीपन एवं अलगाव, पृथक्करण, खाली समय का रचनात्मक उपयोग न होना तथा स्वयं एवं आश्रितों के भरण पोषण हेतु अपर्याप्त आय स्वाभाविक तौर पर उन्हें परिजनों पर आश्रित बना देती है, जिससे वृद्धों को अनुपयोगी समझने की प्रवृत्ति भी बढती जा रही है। इसलिए अब लोग वृद्धावस्था से घबराने लगे हैं।

प्रो0 योगेन्द्र सिंह के शब्दों में–

बुजुर्गो मे समाज को शिखर तक पहुँचने की असीम बौद्धिक क्षमता

है। स्वतन्त्रता के समय हमारे देश में वृद्धों की संख्या 2 करोड़ थी, जो वर्तमान में बढ़कर लगभग 7 करोड़ हो गई है तथा सन् 2025 तक यह संख्या 10 करोड़ तक पहुंचने की संम्भावना है।''

वृद्ध हमारी संस्कृति की अनमोल धरोहर है, इनको सुरक्षित रखना हमारा परम् कर्तव्य है। हम प्रतिवर्ष 1 अक्टूबर को वृद्ध दिवस के रूप में मानते है। वर्ष 1999 को अन्तर्राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष के रूप में मनाया गया है।

जीवन के अन्तिम पड़ाव को वृद्धावस्था के रूप में मनाया जाता है किसी भी समाज में वृद्धावस्था का आगमन काल, भूमिका सम्बन्ध पर वृद्धावस्था का प्रभाव एवं इससे सम्बन्ध अभिप्राय एक जैसा नहीं होता है। इस सन्दर्भ में सक्सेना पी0 सी0 (1964) ने स्पष्ट किया है कि भारत में वृद्धों पर किये गये समाजशास्त्रीय अध्ययन बहुत कम मात्रा में है। किन्तु विदेशों में किये गये अध्ययनों की संख्या अधिक है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वृद्धावस्था स्वयं सामाजिक मनोवैज्ञानिक एवं जैवकीय सन्दर्भो की संयुक्त समस्या प्रतीत होती है, जिसकी पृष्ठभूमि में जरायु की विचलित प्रक्रियायें तथा रहस्यात्मक अथवा अस्वाभाविक परिस्थितियों का वृद्धजनों पर दबाव ही प्रमुख है। अनेक प्रतिकूल स्थितियों में बोझ से बोझिल साठोत्तर वृद्ध प्रायः अपने अतीत व वर्तमान जीवन की तुलना करते पाये जाते है। अतीत जितना सुखद एवं निश्चित रहा भविष्य उतना ही दुःखद एवं अनिश्चित प्रतीत होने लगता है। बड़े ही दुःख भरे मन से वृद्ध ये कहते पाये गये है, जितना अच्छा अतीत था, जब चारों ओर हमारे पास खुशियाँ ही खुशियाँ थी, पैसा था, तभी सब हमारा आदर करते थे, परन्तु अब वृद्धावस्था में चारों ओर अंधेरा एवं निराशा ही नजर आती है। कोई हमारा कष्ट सुनने वाला नहीं था।

भारत में वृद्धावस्था की सरकारी रूप में स्वीकृत परिभाषा 55 वर्ष थी, जब व्यक्ति सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त हो जाते थे, बाद में इसे 58 वर्ष कर दिया गया। वर्तमान में यह आयु अलग–अलग विभागों में अलग–अलग निर्धारित की गई है। प्रदेश सरकार द्वारा शासकीय विभागों के लिए यह आयु 60 वर्ष निर्धारित की गई है, जबकि अनेकों विभागों में यह 62 वर्ष

निर्धारित की गई। वर्तमान में अनेकों शिक्षक संगठनों, मजदूर संगठनों तथा कर्मचारी संगठनों की मांग पर सरकार इसे पैंसठ वर्ष करने जा रही है।

पश्चिमी देशों में ऐसे समय में व्यक्ति वृद्ध माना जाता है जब वह व्यक्ति 60 से 65 वर्ष के मध्य पहुँच जाता है। वृद्धायु का निर्धारण जीवन प्रत्याशा के साथ स्वभाविक रूप से जुड़ा हुआ है। इस शताब्दी के आरम्भ में यह 23 वर्ष थी जो 1951 में 32 वर्ष हो गई एवं गत तीन दशकों में 51 वर्ष हो गई, जिसमें शताब्दी के अन्त तक 60 वर्ष है। भारत के उत्तर पश्चिमी भाग में यह पहले 65 वर्ष तथा कालान्तर में यह 78 वर्ष निर्धारित है। जीवन प्रत्याशा बढ़ जाने से माँग की गई है कि सरकार की सेवानिवृत्त आयु 60 वर्ष से बढ़ाकर 65 वर्ष कर देनी चाहिए।

जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 1981 में 60 वर्ष से अधिक आयु के लागों की संख्या 42.5 मिलियन थी। यह हमारी कुल जनसंख्या का 5 प्रतिषत से अधिक है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 60 वर्ष से अधिक आयु के लोगों की संख्या 60 मिलियन से अधिक है। जबकि वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की संख्या लगभग 62 करोड़ के आसपास है।

चिकित्सकीय सुविधाओं की लगातार वृद्धि तथा आय के बेहतर साध ानों के कारण लोगों के खानपान में परिवर्तन हुआ है, फलतः वृद्धों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है। अधिकांश वृद्ध ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं, वैसे भी वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की लगभग 70 फीसदी आबादी गाँवों में निवास करती है। सुविधाओं की वृद्धि से स्पष्टतया वृद्धों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है। अधिकांश वृद्ध ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, क्योंकि भारत की जनसंख्या का स्वरूप ग्रामीण है। ग्रामीण क्षेत्र में 60 वर्ष से ऊपर व्यक्तियों का अनुपात 60 वर्ष से कम आयु वालों से अधिक है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश वृद्ध व्यक्ति जीवन के सांयकाल में अपने मूल निवास स्थान में बसना चाहते हैं।

भारतीय संस्कृति में हिन्दू संयुक्त प्रणाली उनको सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती थी तथा उनकी पूरी देखभाल करती थी। वे परिवार के मुखिया होते थे तथा घर–परिवार के प्रत्येक निर्णय में उनकी सक्रिय भागीदारी होती थी। बगैर बुजुर्गों के आदेश व अनुमति के घर में पत्ता भी नहीं हिलता था, परिवार और खानदान की परम्पराओं के विपरीत जाना तो दूर की बात थी। वे बालक के चरित्र निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। ग्रामीण कृषि समाज में वे घर के बड़े बुजुर्ग थे।

भारत में 75 प्रतिशत वृद्ध अपने बड़े बच्चों के साथ रहना चाहते हैं, कारण है कि इस देश के अनेक क्षेत्रों में अभी तक प्राचीन रीति रिवाज चलन में रहे हैं। अधिसंख्य वृद्धों की मान्यता रहती है कि उनका अन्तिम क्रियाकर्म उनका बडा पुत्र ही करे। यद्यपि इस प्रकार के रीति रिवाज काफी हद तक समाप्त हो रहे हैं। किसी समय वृद्धों का भारतीय समाज की परम्पराओं एवं इसके सामाजिक मूल्यों के कारण बड़ा आदर होता था।

मनुष्य के जीवन में वृद्धावस्था का आगमन एक परम् सत्य है। उसके आयु चक्रों में शैशवावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था सरलता से व्यतीत होना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। शैशवावस्था, किशोरावस्था एवं युवावस्था में हम जिन अपनों से घिरे रहते हैं तथा जिनसे हमें प्रेम, अपनापन तथा सुरक्षा प्राप्त होती है, वृद्धावस्था में यही भीड़ धीरे–धीरे छँट जाती है और वृद्ध व्यक्ति अपने को नितान्त अकेला महसूस करता है। वृद्ध व्यक्ति स्वयं जब इन समस्याओं से घिरा हुआ होता है तो उस समय अधिकांशतः सगे–सम्बन्धी एवं संगी–साथी उसे अपनी विचारधाराओं एवं अवधारणा से अत्यन्त अलग –अलग मानते हुए उनको अपना समय व आदर, प्रेम–सम्मान आदि नहीं दे पाते हैं।

वृद्धावस्था प्राकृतिक आयु का एक शाश्वत् नियम है, जिसे समाप्त नहीं किया जा सकता। विश्व के सभी समाजों में वृद्धावस्था एक बड़ी समस्या है। संसार का कोई व्यक्ति यह नहीं चाहता कि वह वृद्ध हो और यदि वृद्ध हो तो समस्याग्रस्त एवं पराश्रित न हो। वृद्धावस्था प्राकृतिक आयु का एक शाश्वत् नियम है, जिसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। यह

अवश्य है कि वृद्धावस्था की समस्याओं को बड़ी ही सूझबूझ के साथ सुलझाया जा सकता है। अकेलेपन से ग्रस्त वृद्ध व्यक्ति को प्रेम, सुरक्षा तथा सम्मान की आवश्यकता होती है, जो उसे भौतिकवादी एवं व्यक्तिवादी मूल्यों के वर्चस्व के कारण नहीं मिल पाता है, जिससे उसका शेष जीवन समस्या ग्रस्त हो जाता है।

सामाजिक समस्या, मानव सम्बन्धों की वह समस्या है, जो समाज को संकट में डालती है या लोगों की महत्वपूर्ण आकांक्षाओं को प्राप्त करने में रूकावट पैदा करती है। परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य नियम है। मनुष्य के जीवन में भी बचपन, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था को एक कटु सत्य के रूप में देखा जा सकता है। परन्तु जीवन के अन्तिम पड़ाव में मनुष्य को कितनी परिवर्तनशील परिस्थितियों से जूझना पड़ता है, शायद उतना जीवन के किसी और चरण में नहीं। भारत में वृद्धों की लगातार बढ़ती जनसंख्या से जो चिन्ताऐं व्यक्त की जा रही हैं, उनसे ऐसा लगता है कि आगामी समय में सामाजिक अस्थिरता उत्पन्न हो सकती है।

वृद्ध व्यक्तियों के जीवन में आने वाली समस्याये

- वैचारिक मतभेदों के परिणामस्वरूप युवा पीढी व वृद्धों के मध्य उत्पन्न होने वाली संघर्षात्मक स्थिति।
- वृद्ध जीवन से जुडी बीमारियों से गुजरना तथा परिवारजनों की ओर से उपचार व देखभाल की अपर्याप्त व्यवस्था।
- व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के विकास तथा एकाकी परिवार व्यवस्था के उदय से युवा पीढी के दृष्टिकोण में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वृद्धों की सामाजिक सुरक्षा में आने वाली कमी।
- प्रायः बड़े परिवारों में स्वतन्त्र आमदनी होने के पश्चात् भी वृद्धों को पर्याप्त व पोषण युक्त भोजन की कमी को झेलना पड़ता है।
- पेंशन के रूप में प्राप्त मासिक आय को भी प्रायः वृद्धजनों का अपने बच्चों के परिवारों की दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यय करना पड़ता है और ऐसा न करने पर परिवार में तनाव व संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

पारिवारिक सामाजिक समस्याऐ

1. एकाकीपन तथा उपेक्षित अनुभव करना।
2. अलगाव अनुभव करना एवं सेवा सुश्रुषा में कमी की अनुभूति।
3. अपनी सन्तान से अपनत्व की कमी महसूस करना।
4. परिवार के सदस्यों द्वारा अनदेखी तथा उपेक्षा करना।
5. परिवारजनों से पारस्परिक सामाजिक दूरी अनुभव तथा परिवार व समाज के साथ यथोचित सामंजस्य स्थापित न कर पाना।

आर्थिक समस्याऐ

1. स्वयं की निजी आय (आमदनी) पर्याप्त न होना।
2. मानसिक तनाव सम्बन्धी समस्याएं।
3. शारीरिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रोग तथा बीमारियों की समस्याएं।
4. सामाजिक–सांस्कृतिक प्रदूषण अनुभव करने की समस्या।
5. स्वयं के लिए आवास की कमी अनुभव करना।
6. अनेक मामलों में देखा गया हैं कि सेवानिवृत्त होने के पश्चात परिवार में वृद्धों की परिस्थिति एकाएक अत्यन्त निम्न हो जाती है।

वृद्धों के जीवन की प्रमुख सामान्य समस्यायें

1. शारीरिक शिथिलता, मानसिक एवं कार्यिक शक्ति में निरन्तर गिरावट आना।
2. आधुनिक शिक्षा प्रणाली एवं युवा पीढ़ी की कार्य पद्धति।
3. औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण का प्रभाव।
4. व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण।
5. सन्तति अन्तराल एवं संयुक्त परिवार का निरन्तर विघटित होना।
6. सामाजिक सुरक्षा के उपायों की कमी तथा खर्चीला रहन–सहन।
7. नगरीय क्षेत्रों में निवास हेतु पर्याप्त स्थान का अभाव तथा सहानुभूति रहित वातावरण।

8. युवा पीढ़ी का प्रव्रजन करना।
9. पुरूषों के समान महिलाओं को रोजगार की सुलभता एवं उपलब्धता।
10. वृद्धों की अतिरिक्त आर्थिक जिम्मेदारियों यथा–बच्चों की शिक्षा–दीक्षा, कन्याओं का विवाह, जिनका जीवन के अन्तिम क्षण तक करना शेष रह जाता है।
11. नौकरी, प्रस्थिति, सम्पत्ति, शारीरिक क्षमता आदि में होने वाली हानि के साथ–साथ विभिन्न सामाजिक उत्तरदायित्वों का निरन्तर बढ़ता हुआ दबाव।

इस प्रकार उपरोक्त कारक वृद्धों के जीवन में निम्नलिखित समस्याओं को उत्पन्न करने में सहायक होते हैंः–

1. शारीरिक समस्यायें जैसे असमर्थता एवं अनेक गम्भीर व्याधियाँ।
2. देखभाल एवं चिकित्सा सुविधाओं का अभाव कायिक शौथिल्य एवं अपंगता से उत्पन्न घृणात्मक एवं तिरस्कृत जीवन एवं अनाथ जैसी स्थिति का बन जाना।
3. सन्तानों द्वारा वृद्धों की देखभाल को नकारना तथा स्वःस्वार्थ हेतु सम्पत्ति आदि के विक्रय हेतु वृद्धों को मजबूर करना या उन्हें अपनी इच्छा में परिवर्तन हेतु विवश करना।
4. वृद्धों की अनेक आर्थिक समस्याओं यथा संसाधनों की कमी होना, सेवानिवृत्त होना एवं आय का संकुचन या समापन हो जाना।
5. अनेकानेक मनोवैज्ञानिक समस्यायें यथा एकान्त, खालीपन, परिवार का बोझ होने की भावना से ग्रसित होना तथा यह मानने लगना कि सब कुछ समाप्त हो गया है।
6. विभिन्न संवेगात्मक समस्यायें यथा अपनी ही सन्तानों से अलग रहना तथा अपने संगी साथी वर्ग से अन्तः क्रियायें न कर पाने की विवशता।
7. तिरस्कार, घृणा, कार्यिक हनन, अनावश्यक दबाव एवं कष्ट देने से जनित व्याग्रता व चित्त की खिन्नता जैसी अनेक समस्याओं को जन्म देती है।

8. सामाजिक समस्यायें, इसके अन्तर्गत वे समस्त समस्यायें सम्मिलित हैं जिनका जन्म जीवन साथी के दिवंगत हो जाने के उपरान्त संगी साथियों (समूहों) से सम्बन्ध समाप्त होने, जीविकोपार्जन के साधन के समाप्त हो जाने, सामाजिक प्रस्थिति के क्षीण हो जाने के परिणाम स्वरूप होती है।

वृद्ध व्यक्ति अपने परिवार के बजट पर नियंत्रण रखते थे। उन्हें ज्ञान वृद्धि, अनुभव एवं दूरदर्शिता का प्रकाश स्तम्भ समझा जाता था, परन्तु स्थिति में अब परिवर्तन आ गया है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता के कारण उत्पन्न सामाजिक मूल्यों, सामाजिक संरचना एवं अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन प्रारम्भ हो गया है।

पीढ़ियों के मध्य संघर्ष, पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन तथा व्यक्तिवाद विचारधारा के कारण वृद्ध व्यक्तियों के समक्ष अनेकानेक सामाजिक समस्याऐं उपस्थित होती हैं। पीढ़ी के सदस्य अपने मामलों में वृद्ध लोगों का हस्तक्षेप सहन नहीं करते, उनकी प्रायः उपेक्षा की जाती है, युवा पीढी समझती है कि वे वृद्ध हैं तथा उन्हें आज के आधुनिक समय व समाज की समझ नहीं है, परिणामस्वरुप वे बात–बात में उन्हें झिडकते रहते हैं, व उनका अपमान करते हैं। इसके फलस्वरूप वृद्ध व्यक्ति अपने जीवन को निरर्थक समझने लगते हैं। कभी कभी अवसादग्रस्त हो आत्महन्ता भी हो जाते हैं। वृद्ध जीवन की सामाजिक समस्याओं में कई तरह की समस्याऐं देखी जाती हैं।

जब व्यक्ति वृद्ध हो जाता है तो उसे विभिन्न परेशानियों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उसे अपने बच्चों और समाज के साथ सामन्जस्य बिठाने में बहुत परेशानी होती है, क्योंकि वे एक दूसरे की भावनाओं को समझ नहीं पाते और उनमें सामन्जस्य का अभाव हो जाता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति के व्यवहार में बहुत कड़वाहट आ जाती है क्योंकि वे सोचते हैं कि किसी को उनकी परवाह नहीं है, जिस कारण वह हीनभावना से ग्रस्त हो जाते हैं। वृद्धावस्था के दौरान वृद्ध व्यक्ति में यान्त्रिक उदासी भी आ

जाती है, क्योंकि यह सामान्य प्रक्रिया है। वृद्धावस्था में या तो व्यक्ति की आमदनी ठप्प हो जाती है या वहुत कम हो जाती है क्योंकि इस समय उनकी ज्यादा काम करने की शक्ति क्षीण हो जाती है जब वह काम ही नहीं कर पाते हैं तो उनकी आमदनी में कमी स्वाभाविक रुप से आ ही जाती है। वृद्धावस्था में व्यक्ति दूसरों पर निर्भर हो जाता है, तो उसे उन्हीं के हिसाब से चलना पड़ता है जिस पर वह निर्भर होता है, जिसके कारण भी वह हीनता का शिकार हो जाता है।

वृद्धावस्था में अन्य अवस्थाओं की तरह ही वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन की समस्या भी मिलती है। जो समस्याऐं प्रायः वृद्धावस्था में परिलक्षित होती हैं, वे निम्नलिखित हैं –

1. शारीरिक समस्याऐं– वृद्धावस्था में शारीरिक समस्याऐं ज्यादा दिखती हैं। सामान्य रूप से जो शारीरिक समस्याऐं प्रायः सभी वृद्धों में पायी जाती हैं वे होती हैं– रोग एवं शारीरिक विकलांगता की समस्या, कुपोषण की समस्या, दन्तविकृति की समस्या, लैंगिक वंचन की समस्या तथा दुर्घटनाओं की समस्या। प्रायः यह देखा जाता है कि इस अवस्था में रक्त संचार में कमी आ जाती है तथा वृद्ध लोगों में उपापचय की समस्या भी तीव्रगति में पायी जाती है। जोड़ों में दर्द की समस्या, हृदय स्पन्दन की समस्या, आर्थराइटिस की समस्या भी दिखायी पड़ती है। इस आयु में वृद्ध लोगों की श्रवण शक्ति तथा दृष्टि क्षमता में भी कमीं देखी जाती है। उससे वे भी काफी परेशान रहते हैं तनाव की स्थिति तथा मानसिक एवं नाड़ी तन्त्र में गड़बड़ी से भी वे काफी चिन्तित रहते हैं। इन सभी के अतिरिक्त शारीरिक क्षमता में ह्रास से भी वे काफी परेशान रहते हैं। इस अवस्था में पाचन शक्ति में गड़बड़ी के कारण भी वे कुपोषण के शिकार हो जाते हैं प्रायः ज्यादातर वृद्धों के इस अवस्था में दाँत टूट जाते हैं या कमजोर हो जाते हैं, जिसके कारण उन्हें खाने पीने में भी समस्या होती है। कुछ लोग इस अवस्था में डैन्जर्स आदि का प्रयोग करते हैं परन्तु उसके बावजूद भी उन्हें भोजन चूसने एवं चबाने में कठनाई होती है, जिसके परिणामस्वरुप प्रोटीन जैसे पदार्थों का सेवन उचित ढंग से नहीं कर पाते हैं और शारीरिक

क्षमता में ह्रास दिखायी देता है। दॉतों के टूट जाने के कारण उनकी वाणी भी विकृत हो जाती है। प्रायः वाणि विकृति में अशुद्ध उच्चारण एवं अस्पष्ट उच्चारण की समस्या प्रदर्षित होती है। इस उच्चारण से उन्हें आत्मग्लानि होती है। उस अवस्था में प्रायः यह भी देखा जाता है कि प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्तियों के कारण लैंगिक क्रियाओं में भी कमी आती है या प्रायः समाप्त हो जाती है। ऐसा देखा जाता है कि विवाहित लोग जो अपने वैवाहिक जीवन से प्रसन्न रहते हैं वे ज्यादा स्वस्थ एवं दीर्घायु होते हैं तथा ऐसे लोग जो विवाहित होते हैं या जिनकी दम्पत्ति में से किसी एक की मृत्यु हो जाये ऐसा लोग तथा जो लोग लैंगिक क्रियाओं के प्रति निष्क्रिय हो जाये तो वे स्वस्थ नहीं रहते हैं तथा उनकी आयु भी कम होती है।

एक समस्या यह भी होती है कि वृद्ध लोग दुर्घटनोन्मुख ज्यादा होते हैं। इन दुर्घटनाओं के पीछे उनकी शारीरिक अस्वस्थता, ऑखों तथा श्रवण शक्ति में कमी, आदि का हाथ होता है।

प्रायः यह भी देखा जाता है कि वृद्ध महिलाओं में आग से जलने की दुर्घटनाएॅ बहुत होती हैं। यह दुर्घटना दृष्टि तीक्षणता में कमी के कारण होती हैं। कभी–कभी शारीरिक समस्याओं का कारण आर्थिक कारणों से जुड़ा हुआ होता है। इन आर्थिक समस्याओं के फलस्वरुप वे लोग जो कार्य करना चाहते हैं उसमें कटौती करते हैं तथा स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान नहीं देते हैं। घर में उनके बच्चे तथा सगे–सम्बन्धी यदि उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान देते हैं तो वे अक्सर वृद्ध लोगों पर क्रोधित हो जाते हैं, जिससे वृद्ध लोगों को ग्लानि होती है तथा उनका शारीरिक एवं सामाजिक समायोजन ठीक से नहीं हो पाता है।

2. मनोवैज्ञानिक समस्याऐं– वृद्धावस्था में बहुत सारी मनोवैज्ञानिक समस्यायें भी होती हैं। ऐसा नहीं है कि ये मनोवैज्ञानिक समस्याएं केवल वृद्धावस्था में होती हैं बल्कि ये समस्याएं अन्य अव्यवस्थाओं में भी पायी जाती हैं। परन्तु केवल वृद्धावस्था में मनोवैज्ञानिक समस्याएं इनके सामाजिक समायोजन को बुरी तरह से प्रभावित करती हैं। प्रायः जो सामान्य मनोवैज्ञानिक समस्याएं वृद्धावस्था में प्रदर्शित होती हैं वे मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं –

वृद्धों की सांस्कृतिक रूढ़ियुक्तियों की स्वीकृति

प्रथम गम्भीर मनोवैज्ञानिक समस्या वृद्धों के सामने यह होती है कि वे वृद्धों के प्रति सांस्कृतिक तथा पारस्परिक रूढ़ियुक्तियों की स्वीकृति प्रदान करना है। यह इसलिए समस्या होती हे कि ये पारस्परिक विश्वास एवं रूढ़ियुक्तियों वृद्धों में ऐसी भावना उद्दीप्त करती हैं कि वृद्ध लोग हीनता से ग्रस्त तथा अनुपयुक्तता से भी ग्रस्त होते हैं। यह समस्या उन्हें निष्क्रिय बना देती है तथा वे जिस काम को करने के लिए सक्षम होते हैं उसे भी करने के लिए प्रेरित नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए जो वृद्ध लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि अब वे बहुत वृद्ध हो गए हैं इसलिए नयी क्रियाऐं तथा कौशल को नहीं सीख सकते हैं क्योकि उनका कहना होता हे कि बूढ़े कुत्ते को नयी कौशल नहीं सिखाया जा सकता है, जबकि ऐसा देखा जाता है कि वृद्ध पुरुषों की तुलना में वृद्ध महिलाऐं उस सांस्कृतिक रूढ़ियुक्तियों तथा विश्वासों से ज्यादा प्रभावित होती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योकि समाज के लोग वृद्ध महिलाओं को नकारात्मक रूप में लेते हैं जैसे अनाकर्षक होना तथा धनाभाव एवं वैधव्पन की अवस्था में शारीरिक स्वास्थ्य का गिरना। ये निषेधात्मक अभिवृत्ति वृद्ध महिलाओं के वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन को प्रभावित करती है।

उम्र बढ़ने के साथ–साथ शारीरिक परिवर्तन का प्रभाव

दूसरी मनोवैज्ञानिक समस्या वृद्धावस्था में शारीरिक परिवर्तन के कारण दिखायी देती है। प्रायः ऐसी भावना जन्म ले लेती है कि अब वे इतनी उपयुक्त एवं समर्थ नहीं रह गयी हैं जितनी पहले थीं। इस भावना से उनमें हीनता जन्म ले लेती है। शारीरिक अनाकर्षकता व लिंगोचित निष्पादन में कमी वृद्ध पुरुषों तथा महिलाओं में हीनता की भावना उद्दीपत करती है, जिसके फलस्वरूप सामाजिक समूह उन्हें स्वीकार नहीं करता है इसी अवस्था में यह भी देखा जाता है कि श्रवण शक्ति क्षीण हो जाने के कारण वृद्ध लोग दूसरे लोगों से बातचीत करने में असमर्थ होते हैं। कुछ लोगों में दॉत न होने के कारण अस्पष्ट एवं अशुद्ध उच्चारण की वाणिविकृति जन्म लेती है, जिसके फलस्वरूप वे अच्छी तरह से सम्प्रेषण नहीं कर सकते हैं। इसके कारण भी सामाजिक सम्बन्धों में कमी आती है।

मानसिक रूप से भूलने की प्रवृत्ति

तीसरी मनोवैज्ञानिक समस्या उनके भूलने की प्रवृति से सम्बन्धित होती है वे प्रायः इस आशंका से ग्रस्त रहते हैं कि अब वे वृद्ध हो रहे हैं अतः उनकी मानसिक क्षमता में भी ह्रास होगी। वे प्रायः इससे आशंकित रहते हैं कि अब वे प्रायः चीजों को भूल जाया करेंगे। उनकी याद्‌दाश्त कमजोर हो जाएगी। वे ये भी समझते हैं कि अब मुझे नये नाम, नये तथ्यों को याद रखने में कठिनाई होगी। इन सभी भावनाओं से ग्रस्त होने पर वे समझते हैं कि अब हम लोग बहुत बूढ़े हो गए हैं तथा जो काम अभी वे करने के योग्य होते हैं उन्हें भी छोड़ देना पसन्द करते हैं इस तरह से उनमें सामाजिक विलगन की समस्या भी जन्म लेती है।

जीवन शैली में परिवर्तन

इस अवस्था में उन्हें जीवन शैली में भी परिवर्तन करना पड़ता है इस अवस्था में एक उपयुक्त जीवन शैली धारण करने की मनोवैज्ञानिक समस्या जन्म लेती है। प्रायः सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें अपने बच्चों के साथ रहना पड़ता है जिसके कारण उन्हें अपनी पुरानी जीवन शैली को त्यागकर नयी उपयुक्त जीवन शैली ही अपनानी पड़ती है ऐसा करने में भी उन्हें काफी मानसिक परेशानी होती है। इस सम्बन्ध में जैंतम का कहना है कि बहुत सारे लोगों में अपना घर छोड़कर बच्चों के साथ रहने में असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सुस्ती के अपराध की भावना

पाँचवी मनोवैज्ञानिक समस्या सुस्ती के अपराध की भावना के जन्म से सम्बन्धित होती है। वे अपने शारीरिक अक्षमता के कारण यह सोचते हैं कि और लोग अभी क्रियाशील हैं परन्तु मैं निष्क्रिय हो गया हूॅं। सेवानिवृत्ति के बाद ऐसी भावनाऐं प्रायः जन्म ले लेती हैं क्योंकि उनके पास अब कोई काम करने को नहीं रह जाता है। वे कुछ करना चाहते हैं परन्तु शर्म के कारण कुछ करने को तत्पर नहीं होते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि अब समाज ने मुझे निष्क्रिय मान लिया है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कुछ

वृद्ध इस अवस्था में सामुदायिक क्रियाओं में भाग लेने के प्रति रुचि कम रखते हैं परतु महिलाऐं उसमें ज्यादा रुचि रखती हैं।

सेवानिवृत्ति के बाद वे उस बात से भी परेशान रहते हैं कि पता नहीं समाज से मुझे आत्मसम्मान तथा सामाजिक अनुमोदन मिलेगा कि नहीं। उन्हें आत्मगौरव समाप्त होने की भावना काफी परेशान करती है।

आय में कमी

छठी मनोवैज्ञानिक समस्या आय में कमी के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। सेवानिवृत्ति के बाद ज्यादातर वृद्ध व्यक्ति अपने खाली समय का सदुपयोग आय में कमी के कारण नहीं कर पाते हैं। कभी–कभी वे ऐसा भी पाते हैं कि यदि वे अपना खाली समय टेलीवीजन के सामने बैठकर बिताऐ तो उसमें भी ज्यादातर प्रोग्राम युवा लोगों से सम्बन्धित होते हैं जिससे वे काफी बोर होते हैं।

आय में कमी महिलाएं पुरुषों की तुलना में ज्यादा महसूस करती हैं, जिससे उनकी वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन की क्षमता प्रभावित होती है। यह समस्या प्रायः वैधव्यपन के समय ज्यादा होती है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पति की मृत्यु के बाद उसकी पेंशन बंद हो जाती है तथा पत्नी को जो पारिवारिक पेंशन मिलती है वह नाम मात्र की होती है, जिससे उसका भरण–पोषण दूभर हो जाता है, जिससे वे काफी परेशान हो जाती हैं।

सामाजिक विलगन

यह सातवीं समस्या सबसे गम्भीर मनोवैज्ञानिक समस्या होती है। यह सामाजिक विलगन की समस्या ऐच्छिक एवं अनैच्छिक दोनों कारणों से होती है। लेकिन प्रायः यह अनैच्छिक होती है जैसे शारीरिक स्वास्थ्य के कारण, आय की कमी के कारण तथा अन्य कारणों से भी जिस पर वृद्ध लोगों का नियंत्रण नहीं होता है, उसके कारण सामाजिक विलगन की समस्या जन्म लेती है। इन सभी कारणों से वृद्ध लोग अपने को सामाजिक क्रियाओं तथा क्रियाकलापों से अलग कर लेते हैं। परन्तु ऐसा देखा जाता है कि जो वृद्ध सेवानिवृत्ति के बाद भी वृद्धावस्था में सामाजिक संपर्क तथा

सामाजिक सहभागिता बनाए रखते हैं उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है तथा उनमें आत्मसम्मान की भावना भी प्रबल होती है। उसके कारण उनके जीवन में संतोष की भावना प्रबल दिखाई देती है तथा जीवन के प्रति संतुष्ट रहते हैं।

कुछ वृद्ध लोग सामाजिक संपर्क से, पारिवारिक सदस्यों से तथा सगे–सम्बन्धियों के सम्पर्क से पर्याप्त संतोष प्राप्त करते हैं, जिसके फलस्वरूप वे सामाजिक विलगन के बुरे प्रभाव का अनुभव नहीं करते हैं। कुछ वृद्ध लोग टेलीफोन के माध्यम से भी सामाजिक संपर्क बनाए रखते हैं तथा कुछ लोग आमने–सामने से भी संपर्क बनाते हैं, लेकिन ऐसे लोग प्रायः संतुष्ट दिखाई देते हैं।

प्रायः वृद्ध महिलाओं के लिए सामाजिक संपर्क उस समय ज्यादा महत्वपूर्ण होता है जब उनके पति या तो सेवानिवृत्त हो जाते हैं या उनकी मृत्यु हो जाती है। ऐसे समाज में सामाजिक विलगन की समस्या उनके वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन को प्रभावित करती है।

ऐसे वृद्ध जो ऐच्छिक या अनैच्छिक रूप से अपने को सामाजिक क्रियाओं से अलग रखते हैं वे लोग सामाजिक रूप से एकाकीपन के शिकार हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे सामाजिक सहायता से च्युत रह जाते हैं। जब वे प्रतिबल या चिन्ता की अवस्था में होते हैं उन्हें सामाजिक मदद नहीं मिल पाती है। यह उस समय विशिष्ट समस्या का रूप लेता है, जब विधुर या वैधव्यपन का समय होता है। ऐसा इसलिए होता है कि परिवार में यदि सदस्य कम हैं तो उनकी समस्याओं का निवारण सामाजिक रूप में नहीं हो पाता है।

3. सेवानिवृत्ति से समायोजन की समस्या

शारीरिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं की ही तरह वृद्ध लोगों को सेवानिवृत्ति के बाद होने वाली घटनाओं से वे अपने आप को समायोजित नहीं कर पाते हैं। बींतर्ज; 1973 के अनुसार, सेवानिवृत्ति से पुराने जीवन पद्धति का समापन तथा नयी जीवन पद्धतियों का संक्रमण होता है। इसमें

उनकी भूमिकाऐं बदल जाती हैं उनके मूल्यों, रुचियों तथा पूरे जीवनशैली में बदलाव दिखाई देता है। सेवानिवृत्ति से उनकी आय भी कम हो जाती है तथा उन्हें अपने सारे खर्चों में कमी करनी पड़ती है जिससे उन्हें परेशानी होती है।

उन्हें अपनी आय के अनुसार ही अपनी नई जीवन शैली का निर्माण करना पड़ता है। उन्हें अपनी जिम्मेदारियों के निर्वाह में भी समस्याऐं आती हैं। उनका खाली समय कैसे व्यतीत होगा ऐसे प्रश्न भी उनके दिमाग में उठते हैं, जिससे वे काफी चिन्तित रहते हैं। सेवानिवृत्ति के समय यदि वृद्ध लोगों का स्वास्थ्य उत्तम नहीं है तो उससे भी वैयक्तिक समायोजन में व्यतिक्रम उत्पन्न होता है। यदि उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति अच्छी है तो उनका जीवन आराम से कटता है, परन्तु उसके विपरीत यदि सामाजिक, आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो उनका जीवन कष्टप्रद हो जाता है। सेवानिवृत्ति के प्रति समायोजन में महिलाओं का समायोजन पुरुषों की तुलना में बेहतर होता है। इसका कारण यह होता है कि उनकी भूमिकाओं में पुरुषों की तुलना में कम परिवर्तन होता है। अविवाहित महिलाओं का समायोजन सेवानिवृत्ति के समय घर–गृहस्थी चलाने वाली महिलाएं यानि गृहणी की तुलना में बेहतर होता है।

उसका कारण यह होता है कि अविवाहित महिलाओं के पास सामाजिक साधन ज्यादा होते हैं जिससे वे अपना खाली समय अपने उन साधनों से भर लेती हैं उसके साथ ही साथ वे बहुलैंगिकता के प्रति विवाहित महिलाओं की तुलना में ज्यादा स्वतन्त्र रहती हैं। इस तरह से उनके पास अपना खाली समय व्यतीत करती हैं इसके विपरीत पुरुषों के पास ऐसे साधन मौजूद नहीं रहते हैं जिससे वे अपने सेवानिवृत्ति के बाद अपने को उन साधनों के प्रति स्थानांतरित कर सकें। इसलिए सेवानिवृत्ति पुरुषों के लिए ज्यादा समस्या उत्पन्न करती है और उनके समायोजन को कष्टप्रद बना देती है।

4. पारिवारिक जीवन में परिवर्तन के प्रति समायोजन की समस्या

जैसा कि हमें ज्ञात है कि वृद्धावस्था में पारिवारिक शैली परिवर्तित

होने लगती है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप वृद्ध लोगों को निम्नलिखित पाँच प्रकार के सम्बन्धों के प्रति समायोजन की समस्या से ग्रस्त हो जाते हैं।

प्रथम

पति–पत्नी के आपस में समायोजन की समस्या उत्पन्न होने लगती है। ऐसा देखा जाता है कि ज्यादातर वृद्ध जब कार्य से सेवानिवृत्त होते हैं तो उनका ज्यादातर समय परिवार में ही बीतता है। ऐसे समय में वे अपने पति–पत्नी के सम्बन्धों को अच्छा बनाकर रखना वाहते हैं। परन्तु उसके विपरीत जब उनके सम्बन्ध मधुर नहीं होते हैं तो उनके सम्बन्धों में दरार पड़ जाती है तथा पारिवारिक समायोजन दूषित हो जाता है।

द्वितीय

जो समायोजन की समस्या प्रतीत होती है वह लैंगिक परिवार में व्यवहार के प्रति समायोजन की समस्या जितनी शारीरिक नहीं होती है उससे ज्यादा मनोवैज्ञानिक होती है। इस सम्बन्ध में Kent (1975) का कहना है कि लैंगिक सम्बन्धों के प्रति समायोजन में प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्तियों का भी प्रभाव पड़ता है।

कुछ महिलाऐं गर्भवती होने के समय लैंगिक व्यवहार का प्रदर्शन कम करती हैं। वैसे इस अवस्था में पुरुष तथा महिलाऐं दोनों अपने लैंगिक क्षमता में कमी महसूस करते हैं, इसका कारण शारीरिक परिवर्तन है। इस समय लैंगिक क्रियाओं के प्रति रुचि ज्यादा दिखाई देती है। अध्ययनों से यह पता चलता है कि 60–70 वर्ष की आयु में भी स्त्री पुरुष दोनों लैंगिक संसर्ग रखते हैं, परन्तु लैंगिक संसर्ग की आवृत्ति में कमी आ जाती है। इस समय में उत्तेजना की अवधि पुरुषों में लम्बी होती है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ लैंगिक क्रियाओं में कमी आती है।

वृद्धावस्था में जिनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है उनमें भी लैंगिक क्रियाऐं देखी जाती हैं, परन्तु जो वृद्ध स्वस्थ नहीं रहते हैं उनमें लैंगिक क्रिया प्रायः समाप्त सी हो जाती हैं। स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण प्रायः

पुरुषों में लैंगिक उद्दीपता में कमी आती है जिसके कारण उनका लैंगिक समायोजन गड़बड़ा जाता है। लैंगिक व्यवहार को कई कारक प्रभावित करते हैं जैसे–पिछली अवस्थाओं में लैंगिक व्यवहार की पद्धति; पति–पत्नी की अनूकूल संगति, सामाजिक अभिवृत्तियॉं, लैंगिक अक्षमता आदि।

लैंगिक व्यवहार में लैंगिक भिन्नता भी मिलती है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ कुछ पुरुष लोग लैंगिक रुचि रखते हैं परन्तु लैंगिक रूप से क्रियाशील कम होते हैं। इसके विपरीत महिलाऐं लैंगिक क्रियाओं के प्रति ज्यादा रुचि रखती हैं।

लैगिक क्रियाऐं वैवाहिक समायोजन को भी प्रभावित करती हैं। इस सम्बन्ध में लैंगिक क्रियाओं की आवृत्ति से ज्यादा महत्वपूर्ण लैंगिक क्रियाओं से दम्पत्ति की इच्छाओं की कितनी पूर्ति होती है वह वैवाहिक समायोजन के प्रति उत्तरदायी होती है। सब महिला या पुरुष यह समझते हैं कि लैंगिक क्रियाओं से उनकी लैंगिक इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है तो वह उसको परिस्थापन ढूंढता है तथा हस्तमैथुन तथा दिवास्वप्न तथा कल्पनाओं को उसका माध्यम बनाता है।

तृतीय

तीसरा प्रमुख कारण समायोजन का क्रेन्द्र उनके अपने बच्चों के साथ सम्बन्ध से सम्बन्धित होता है। यदि सम्बन्ध उनके सन्तानों से अच्छा है तो उसका पारिवारिक समायोजन अच्छा होता है। इसके विपरीत बच्चों से सम्बन्ध अनुकूल नहीं है तो उनका पारिवारिक समायोजन खराब होता है। बच्चों से सम्बन्ध उनके परिवारिक सन्तोष को भी प्रभावित करता है। इस सम्बन्ध में यह भी देखा जाता है कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं का अपने बच्चों से सम्बन्ध अच्छा होता है। इसका कारण यह होता हे कि महिलाओं का यह सम्बन्ध बच्चे के जन्म से ही शुरु हो जाता है। माता तथा बच्चे में टकराव की स्थिति कम मिलती है परन्तु पिता तथा बच्चे में टकराव की स्थिति ज्यादा दिखाई देती है। यदि सन्तति एवं माता–पिता का सम्बन्ध 50–55 वर्ष की आयु तक अच्छा रहा है तो ऐसा देखा गया है कि उस आयु के बाद पारिवारिक विलगन की स्थिति उत्पन्न होती है।

चतुर्थ

चौथी समस्या– जो समायोजन की सामने आती है उसमें माता–पिता के अन्दर पराश्रयता की भावना से होती है। अक्सर यह होता है कि वृद्धावस्था में पुरुष तथा महिलाऐं अपने बच्चों पर निर्भर हो जाते हैं। वे समझते हैं कि मेरी भूमिकाऐं अब मेरे बच्चे ले रहे हैं कारण कि अभी तक जो परिवार का मुखिया था अब वह अपने बच्चों पर आश्रित हो चुका है। सेवानिवृत्ति के बाद आर्थिक मदद के लिए भी ज्यादातर माता–पिता बच्चों पर निर्भर हो जाते हैं। जब वे इस अवस्था में भी अपनी सत्ता को नहीं छोड़ते हैं तो अनके बच्चे उनका विरोध करते हैं तथा क्रोधित हो जाते हैं। इस क्रोध का कारण उनकी देख–रेख करना तथा शारीरिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

ऐसा देखा जाता है कि जो लोग वैवाहिक रूप से समायोजित होते हैं तथा प्रसन्न होते हैं तथा उनकी आर्थिक स्थिति ठीक होती है ऐसे लोग अपने बच्चों पर कम निर्भर होते हैं लेकिन जिन लोगों का दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं होता है, ऐसे लोग अपने बच्चों पर ज्यादा निर्भर रहते हैं। आर्थिक निर्भरता माता–पिता को ज्यादा कष्टकारी होती है तथा उन्हें उसके लिए कई प्रकार के कटु बातों को निगलना पड़ता है। यह कष्ट उन माता–पिता को ज्यादा होता है जो पिछली अवस्थाओं में परिवार के भरण–पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। आर्थिक रूप से निर्भर होना संस्कृति पर निर्भर करती है।

पंचम

पाँचवी समस्या जो देखने को मिलती है वह है उनका नाती–पोतों के साथ सम्बन्ध बनाने में समायोजन की समस्या। वृद्धावस्था में ज्यादातर स्त्री तथा पुरुषों के नाती–पोते किशोर अवस्था में होते हैं। उसमें यह देखा जाता है कि यही दादा–दादी इन बच्चों से दूर रहते हैं तथा उनका कभी–कभी सम्पर्क उनसे होता है। परिणामस्वरूप यह होता है कि मूल्यों, अभिव्यक्तियों, व्यवहार एवं वेशभूषा में परिवर्तन तथा नैतिक मानकों में परिवर्तन से दादा–दादी अपने नाती–पोते के मध्य काफी दूरी समझते हैं या

पाते हैं। दादा–दादी उनके इस व्यवहार एवं वेशभूषा को अनुमोदित नहीं करते हैं तो नाती–पोते उन्हें रूढ़िवादी कह कर पुकारते हैं।

दम्पत्ति में से किसी एक की मृत्यु के बाद समायोजन की समस्या

वृद्धावस्था में सबसे बड़ी समस्या समायोजन की होती है जब दम्पत्ति में से किसी की मृत्यु हो जाती है। दम्पत्ति की क्षति प्रायः मृत्यु से या तलाक के फलस्वरूप होती है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि महिलाओं में विधवापन की समस्या पुरुषों में विधुर होने की समस्या से ज्यादा होती है। ऐसा अनुमान है कि 50 प्रतिशत महिलाऐं 60 वर्ष की आयु में विधवा हो जाती हैं, जबकि 85 प्रतिशत महिलाऐं 85 वर्ष की आयु तक विधवा हो जाती हैं। पुरुषों के विधुर होने का उम्र के हिसाब से कोई प्रमाणित आँकडें अप्राप्त है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विधुर लोग पुनर्विवाह कर लेते हैं इसलिए इनकी संख्या महिलाओं की तुलना में कम होती है। दम्पत्ति में से किसी एक की भी मृत्यु हो जाने पर पुरुष तथा महिलाओं को काफी समस्या का सामना करना पड़ता है।

जब किसी पुरुष की पत्नी का देहावसान हो जाता है उस समय जब वह सेवा निवृत्ति प्राप्त कर चुका हो तो उसके लिए सेवानिवृत्ति से समायोजन में काफी समस्या होती है। वैसे यह सही है कि उनके सामने आर्थिक समस्या नहीं होती है क्योकि उन्हें पेंशन मिलती है, सामाजिक सुरक्षा भी मिलती है परन्तु विधुरपन के साथ समायोजन स्थापित करना उनके लिए समस्या बन जाती है, पत्नी के देहान्त के बाद वे अकेलेपन की भावना से ग्रस्त हो जाते हैं तथा इसे दूर करने के लिए वे अपनी नयी रुचियॉ विकसित करते हैं जिसके कारण भी समस्या बढ़ जाती है। दूसरी समस्या विधुर के सामने यह भी होती है कि उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद उनका ख्याल रखने वाला और कोई दूसरा नहीं होता है जिससे वह अपने दिल की बात कर सकें उससे भी वे परेशान रहते हैं। दूसरी बात यह भी देखी जाती है कि जिन लोगों का वैवाहिक सम्बन्ध मधुर नहीं रहा है वे भी समझते हैं कि उनकी पत्नी का साथ वृद्धावस्था में मिलना चाहिए। वे समझते हैं कि पत्नियॉ ही उनकी शारीरिक आवश्यकताओं का ख्याल रख सकती हैं, परन्तु कुछ पुरुष तो विधुर के रूप में जीना पसन्द करते हैं।

पुनर्विवाह की समस्या

दम्पत्ति में से किसी एक की मृत्यु उपरान्त अपने अकेलेपन को दूर करने हेतु प्रायः लोग वृद्धावस्था में भी पुनर्विवाह करने की सोचते हैं परन्तु पुनर्विवाह से समायोजन की समस्या पुनः बढ़ जाती है। प्राचीन काल की तुलना में सम्प्रत्ति पुनर्विवाह आसान हो गया है तथा पुनर्विवाह की आवृत्ति में भी बढ़ोत्तरी हुई है। वैसे अब पुनर्विवाह के प्रति सामाजिक अभिवृत्ति अनुकूल हो गयी है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वुद्ध पुरुष अपने से कम उम्र की महिला से पुनर्विवाह करना चाहते हैं, जबकि मध्यावस्था के पुरुष तथा महिलाऐं अपने उम्र के बराबर या ज्यादा उम्र वाले पुरुष तथा महिला से शादी रचाते हैं। इस तरह से देखा जाता है कि पुरुष तथा महिला के पुनर्विवाह के समय उम्र में कम से कम दस वर्ष का अन्तर मिलता है। जबकि महिलाऐं तथा पुरुष में ऐसी प्रवृत्ति पायी जाती है कि वे लगभग से समआयु वालों से शादी करते हैं। परन्तु उम्र से शादी करने वालों की संख्या समआयु से शादी करने वालों की तुलना में कम होती है।

शादी चाहे जिस उम्र में हो समायोजन की समस्या हर समय दिखायी देती है। पुनर्विवाह हमेशा एक विशिष्ट समस्याओं से युक्त होती है, परन्तु यह बात वृद्धावस्था में पुनर्विवाह पर ज्यादा सटीक बैठती है।

सबसे बड़ी समस्या पुनर्विवाह के बाद यह होती है कि नयी पत्नी या पति के साथ वैवाहिक समायोजन बैठाना। नये रिश्तेदारों से सही सम्बन्ध स्थापित करने की समस्या। दूसरी समस्या जो विशेषकर पुनर्विवाह करने के बाद देखी जाती वह है पारिवारिक आलोचना का शिकार होना। प्रायः उन्हीं के बच्चे उन्हें ऐसा करने पर ठीक नहीं समझते हैं तथा शादी न करने के लिए सलाह देते हैं। यह समस्या विधुर अथवा विधवा दोनों के साथ समान होती है। दूसरी समस्या यह भी देखी जा सकती है कि जो बच्चे बड़े हो जाते हैं वे अपने ही घर में सौतेली माँ या सौतेले पिता को पसन्द नहीं करते हैं। उससे भी बच्चों से टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है तथा उनका वैवाहिक सम्बन्ध सुखमय न होकर और दुखमय तथा तनाव से भरा हो जाता है। इस तरह से देखा जाये तो यहॉ पर विधवा तथा विधुर अपने

अकेलेपन को कम करने के लिए शादी करते हैं वहीं उनकी समस्या प्रबल हो जाती है कि वे पुनर्विवाह करके ऐसा सोचते हैं कि मैंने ठीक नहीं किया। अतः पुनर्विवाह परिवार की खुशहाली की दृष्टि से भी श्रेयस्कर नहीं होता है। परन्तु जीवन में शादी बाद की अवस्थाओं में की जाऐं तो अच्छी मानी जाती है।

वृद्धावस्था में समायोजन को कई कारक प्रभावित करते हैं जो निम्नलिखित हैं।

1. वृद्धावस्था के प्रति पूर्ण तैयारी– मध्यावस्था से ही जो लोग वृद्धावस्था में पहुॅचने पर किस तरह से क्या करना चाहिए उसकी तैयारी कर लेते हैं अनका समायोजन प्रायः अच्छा होता है।

2. आवश्यकताओं की सन्तुष्टि– वृद्धावस्था में जिन लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से हो जाती है उनका समायोजन उन लोगों की तुलना में बेहतर होता है जो लोग अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं कर पाते हैं।

3. प्राचीन मित्रता का बरकरार रहना– जो लोग वृद्धावस्था में अपनी प्राचीन मित्रता या दोस्ती को बरकरार रखते हैं उन्हें अकेलेपन की समस्या से ग्रस्त नहीं होना पड़ता।

4. बड़े बच्चों की अभिवृत्तियॉ– परिवार में अपने बड़े बच्चों की अपने वृद्ध माता–पिता के प्रति कैसी अभिवृत्ति है इसका भी समायोजन पर प्रभाव पड़ता है, अगर बच्चे अपने माता–पिता के प्रति वृद्धावस्था में अनुकूल या सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं तो वृद्ध लोग इसे अच्छा समझते हैं।

5. सामाजिक अभिवृत्तियॉ– वृद्धावस्था में सामाजिक समायोजन को सामाजिक अभिवृत्तियॉ भी प्रभावित करती हैं। सबसे बड़ी समायोजन के प्रति समस्या उत्पन्न होने को कारण वृद्धावस्था के प्रति सामाजिक अभिवृत्तियॉ प्रतिकूल होना है।

6. वैयक्तिक अभिवृत्तियॉ– सामाजिक अभिवृत्तियों के साथ–साथ वृद्ध लोगों का वृद्धावस्था के प्रति अपनी अभिवृत्तियॉ भी उनके समायोजन को प्रभावित करती हैं।

7. आर्थिक दशाऐं– आर्थिक दशाओं का भी समायोजन पर प्रभाव पड़ता है, जिन वृद्ध पुरुष एवं महिलाओं की आर्थिक दशा उत्तम या अच्छी नहीं होती, उनका वैयक्तिक एवं सामाजिक समायोजन वृद्धावस्था में संतोषजनक नहीं होता है।

8. समायोजन की विधि– समायोजन की किस विधि को वैयक्तिक या सामाजिक समायोजन को प्रयोग किया जा रहा है इसका भी प्रभाव पड़ता है।

9. शारीरिक स्वास्थ्य– वृद्धावस्था में समायोजन शारीरिक स्वास्थ्य पर भी निर्भर करता है, जो वृद्ध दीर्घस्थायी रूप से बीमार रहते हैं उनका समायोजन उन लोगों की तुलना में जो अस्थायी रूप से कभी–कभी बीमार हो जातें हैं, खराब होता है।

प्रायः वृद्धावस्था में स्वास्थ्य सम्बन्धी निम्न समस्यायें भी देखने को मिलती हैं–

1. पोषण– ठीक है या नहीं। बीमारी की वजह से या इसके बिगड़ने से रोगी खाना कम कर सकता है व दुबला दिखाई देता है या कोई दूसरी बीमारी भी उसको दुबला कर सकती है।

2. बुखार– बुखार, जोड़ों में दर्द या और कोई दिखने वाली तकलीफ।

3. सूजन– हाथ व पैर में गड्ढ़ा पड़ने वाली सूजन लेप्रोमेटस में आ सकती है। तेज रिएक्सन में भी सूजन आ सकती है।

4. कान में सूजन या लालिमा।

5. छाती में– गयनोकोमेस्टया, गायनकोथीलिया।

6. भंवे में सूजन तथा बालों का झड़ना।

7. खून की कमी– कंजक्टाइवा, जबान, नाखून और तालू में फीकापन देखना।

8. पीलिया– कड़वे तेल जैसा पेशाब, भूख का न लगना, पीली ऑखें व पेट के दाहिने तरफ दर्द पीलिया की निशानी है।

9. मानसिक स्थिति– रोगी परेशान, दुखी या उत्तेजित तो नहीं है।

वृद्धों में सामाजिक सुरक्षा की स्थिति

वृद्धों को वृद्धावस्था में सामाजिक असुरक्षा की स्थितियों से जूझना पडता है।

मॉरिस स्टॉक के अनुसार– ''सामाजिक सुरक्षा से समाज द्वारा आधुनिक जीवन की उन आकस्मिकताओं जैसे–बीमारी, बेरोजगारी, वार्धक्य –पराश्रितता, औद्योगिक दुर्घटनाओं तथा अशक्तता के विरुद्ध सुरक्षा के कार्यक्रम का बोध होता है, जिनके लिए व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं के सामर्थ्य या दूरदर्शिता से अपनी या अपने परिवार की रक्षा की आशा नहीं की जा सकती।

भारतीय समाज कार्य विश्वकोष में सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा गया है, ''सामाजिक सुरक्षा व्यक्ति को विभिन्न आकस्मिकताओं से होने वाले आर्थिक संकट के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करती है तथा उसके लिए राष्ट्र की भुगतान– क्षमता के अनुकूल न्यूनतम जीवन–स्तर सुनिश्चित करती है।''

सामाजिक सुरक्षा की पद्धतियाँ

सामाजिक सुरक्षा के दो आधार स्तम्भ होते हैं– (क) सामाजिक बीमा (ख) सामाजिक सहायता। कुछ लोग सामाजिक सुरक्षा की एक तीसरी पद्धति सार्वजनिक या सामाजिक सेवा का भी उल्लेख करते हैं। सामाजिक सुरक्षा की ये तीन पद्धतियां निम्न प्रकार हैं–

(क) सामाजिक बीमा– सामाजिक बीमा में बीमाकृत व्यक्तियों, विशेषकर कर्मचारियों को बेरोजगारी, वार्धक्य–परनिर्भरता, औद्योगिक दुर्घटना, अशक्तता, बीमारी, मृत्यु आदि आकस्मिकताओं की स्थिति में सुरक्षा प्रदान की जाती है। साधारणतयः सामाजिक बीमा के अन्तर्गत हित लाभ बीमाकृत व्यक्तियों तथा उनके नियोजकों के अंशदान से एकत्र राशि से दिए जाते

हैं। कुछ व्यवस्थाओं में, बीमाकृत व्यक्तियों के अंशदान भी नियोजकों से एकत्र किए जाते हैं तथा कुछ में राज्य भी अनुदान देता है।

सामाजिक बीमा हित लाभ में निम्न को शामिल किया जाता है–

1. बीमारी हितलाभ
2. अशक्तता हितलाभ
3. प्रसूति हितलाभ
4. वार्धक्य हितलाभ
5. बेरोजगारी हितलाभ
6. भविष्य निधि
7. आश्रित या उत्तरजीवी हितलाभ

(ख) सामाजिक सहायता– सामाजिक सहायता साधारणतय' अल्प साधन वाले व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक सहायता के रुप में दी जाती है। सामाजिक सहायता देने के पूर्व हिताधिकारी की आर्थिक आवश्यकता का निर्धारण जीविका साधन, जांच द्वारा किया जाता है। सामाजिक सहायता नगद या चेक रुप में दी जाती है।

सामाजिक सहायता कार्यक्रमों के उदाहरण निम्नवत् हैं–

1. वार्धक्य सहायता
2. नेत्रहीनों की सहायता
3. आश्रित बालकों के लिए सहायता या भत्ता
4. स्थायी तथा पूर्ण रुप से अशक्तों को सहायता
5. अति निर्धन परिवारों को सहायता

(ग) सार्वजनिक या सामाजिक सेवा– कुछ लोग सामाजिक सुरक्षा की एक तीसरी पद्धति सार्वजनिक या सामाजिक सेवा बताते हैं। उनके अनुसार सार्वजनिक या सामाजिक सेवा समुदाय के निर्धारित श्रेणियों या समूहों या सारे समुदाय के सभी लोगों को राज्य कोष से प्रदान की जाती है।

सार्वजनिक या सामाजिक सेवा के उदाहरण निम्नवत् है–

1. निःशुल्क स्वास्थ्य सेवायें
2. समाज के बाधित समूह का पुनर्वासन
3. पारिवारिक भत्ते
4. विशेष जनसमूहों के लिए पेंशन या अनुदान।

वृद्धों के संरक्षण हेतु किये गये शासकीय एवं संवैधानिक प्रयास

केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा समय–समय पर वृद्धों के संरक्षण हेतु शासकीय व संवैधानिक प्रयास किये हैं, जिनमें से कुछ अग्रांकित है–

वृद्ध व्यक्तियों से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति

वृद्ध व्यक्तियो संबंधी राष्ट्रीय नीति के अंतर्गत वृद्ध व्यक्तियों के लिए उनकी राष्ट्रीय चिन्ताएं हैं तथा उन्हें असुरक्षित, उपेक्षित रुप से बचाने के लिए इस नीति के उद्देश्य समाज में उनके विधिसम्मत स्थान को सुदृढ़ करने के अन्तिम चरण में उद्देश्यपूर्ण, सम्मान तथा शांति से व्यक्त करने के अर्न्तगत सरकार के भीतर तथा सरकार और गैर सरकारी एक समन्वय के लिए एक विस्तृत फ्रेमवर्क प्रदान किया गया है।

वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण के लिए हस्तक्षेप के लिए अनेक क्षेत्रों की पहचान, देखभाल तथा पौष्टिकता, आवास, शिक्षा, कल्याण, जीवन तथा सरकारी नीति के अर्न्तगत इस दिशा मे राज्यों द्वारा किए जा रहे प्रयासों, वहनीय सेवाओ को उपलब्ध कराने में गैर सरकारी संगठनो (एन0जी0ओ0) की मद्द ली गई है।

उपयोगी आयु वाले वृद्धों का संवर्धन करने की पहचान करते हुए, औपचारिक सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने में परिवार के महत्व संबधी राष्ट्रीय नीति। (सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय 1999)

राष्ट्रीय नीति के प्रचार के लिए अपनाई गई कार्यान्वयन नीति–

1– कार्रवाई योजना तैयार करना

2– सामाजिक न्याय एवं अधिकरिता मंत्रालय में वृद्ध व्यय करना

3– राज्यों में समवृद्ध व्यक्तियों के लिए निदेशालयो की स्थापना।

4– नीति कार्यान्वयन की तीन वर्षीय सार्वजनिक समीक्षा।

5– सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री की अध्यक्षता में स्थापना करना (केन्द्रीय मंत्रालयो, राज्यों के प्रतिनिधि, प्रतिनिधित्व करने वाले गैर सरकारी सदस्य तथा विशेषज्ञ)

6– वयोवृद्ध व्यक्तियो के लिए स्वायत्तशासी राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना।

7– स्थानीय स्व शासन की भागीदारी को प्रोत्साहित करना।

कार्रवाई योजना –

वृद्ध व्यक्तियो संबंधी राष्ट्रीय नीति को परिचालित करने के लिए एक कार्ययोजना तैयार की गई है। इस योजना के अनुसार की जाने वाली कार्यवाही को कार्यान्वित किया जाना है यह असीम संभावनाओं से युक्त दस्तावेजी कार्रवाईयो को सीमित अथवा प्रतिबन्धित नही करता है मंत्रालयों /विभागों/संगठनों को परिचालित किया गया है। एक अंतर मंत्रालयी समिति का गठन किया गया है, जो कि इस का मूल्यांकन करेगी। अंतर विभागीय समिति के माध्यम से इसे कार्यान्वित किया जा रहा है। प्रत्येक तीन वर्ष के अंतराल पर इसकी मॉनीटरिंग की जायेगी। (वार्षिक प्रतिवेदन, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय सामाजिक सुरक्षा संस्थान का समाचार पत्र, अंक 3, संख्या 2 में)

वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय परिषद्

वृद्ध व्यक्तियों संबंधी राष्ट्रीय नीति को प्रचालित करने के लिए तत्समय वर्ष 1999 से वृद्ध व्यक्तियो के लिए एक राष्ट्रीय परिषद का गठन किया गया। इस परिषद मे 39 सदस्य है, प्रत्येक वयोवृद्ध व्यक्ति से सुझाव नाम निर्दिष्ट कार्यालय है। एन0 सी0 ओ0 पी0 के सदस्यो में से एक किया गया है।

मंत्रालय की योजना

राष्ट्रीय नीति को कार्यान्वित करने में सुगमता प्रदान करने तथा गुणात्मक सुधार लाने के लिए निम्नलिखित योजनाओ को लागू करना–

1– वयोवृद्ध व्यक्तियों के लिए वृद्धावस्था गृह/बहु सेवा संस्थानों/स्वैच्छिक संगठनों/स्व–सहायता समूहों को सहायक सेवा केन्द्रों के निर्माण के लिए एक मुश्त निर्माण अनुबंध संशोधित किया गया है। पात्रता रखने वाले संगठनों को सम्बद्ध किया जाता है।

2– वृद्ध व्यक्तियों के कल्याण से संबधित कार्यक्रमों के लिए की गई पूर्व योजना को संशोधित करते हुए वयोवृद्ध व्यक्तियों के लिए किया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वयोवृद्ध व्यक्तियो को संबोधित करना है। इस योजना के अंतर्गत वृद्धावस्था गृहों, डे–केयर सेण्टर की स्थापना तथा उनका रख रखाव करना है।

3– एन0आई0सी0आई0 परियोजना (वयोवृद्ध की देखभाल संबंधी राष्ट्रीय वयोवृद्ध व्यक्तियों के लिए नागरिको को समुदाय सहायक संवेदनशील बनाना है।)

राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (एन.ओ.ए.पी.ए.)

राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत निम्नलिखित मानदण्डों से प्राप्त की जाती है–

- आवेदक (महिला अथवा पुरूष) की आयु 65 वर्ष या इससे अधिक नही होनी चाहिये।
- आवेदक निराश्रित होना चाहिए अर्थात उसके पास अपनी स्रोत किसी अन्य वित्तीय सहायता प्राप्त करते हुए जीवन यापन करना चाहिए।
- केन्द्र सरकार की ओर से वृद्धावस्था की प्रतिमाह राशि 200/– योजना को पंचायतों तथा नगर पलिकाओं द्वारा कार्यान्वित किया जाता है और इसमें अलग से अंशदान दिया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वयोवृद्ध व्यक्तियों के कल्याण हेतु किए गए प्रावधान– संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने 16 दिसम्बर 1991 को संकल्प (46/91) द्वारा 'वयोवृद्ध व्यक्तियों' के लिये सिद्धान्तों को अंगीकार किया। ये सिद्धान्त जिनकी संख्या 18 थी, वयोवृद्ध व्यक्तियों की स्वतन्त्रता एवं गरिमा से सम्बन्धित थे। इन सिद्धान्तों में से कुछ सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1. वयोवृद्ध व्यक्तियों को कार्य करने का अवसर तथा कार्य छोड़ने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिये।
2. वयोवृद्ध व्यक्तियों को समाज में अभिन्न रूप से बने रहना चाहिये तथा ऐसी नीतियों के सृजन के समय सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिये जो उनके कल्याण को प्रभावित करती हो।
3. वयोवृद्ध व्यक्तियों की शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक कल्याण के उच्चतम स्तर को बनाये रखने में सहायता प्रदान करने के लिये स्वास्थ्य सम्बन्धी देखभाल तक पहुंच होनी चाहिये।
4. वयोवृद्ध व्यक्तियों को अपनी संभाव्यताओं के पूर्ण विकास का अवसर तथा समाज के शैक्षणिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं मनोरंजन सम्बन्धी संसाधनों तक पहुंच होनी चाहिये।
5. वयोवृद्ध व्यक्तियों को गरिमा एवं सुरक्षा से रहने के लिये सक्षम होना चाहिये तथा शोषण एवं मानसिक और शारीरिक दुरूपयोग से स्वतन्त्र होना चाहिये।

सरकारों को इन सिद्धान्तों को अपने राष्ट्रीय कार्यक्रमों में शामिल किये जाने हेतु प्रोत्साहित किया गया। महासभा ने 15 एवं 16 अक्टूबर, 1992 को दसवीं वार्षिकी को चिन्हित करने के लिये विशेष अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया। बाद में 11 नवम्बर, 1992 को महासभा ने वृद्धजनों पर उद्घोषणा को अंगीकार किया, जिसके द्वारा इसने वर्ष 1992 को वयोवृद्ध व्यक्तियों के अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष के रूप में मनाने का विनिश्चय किया।

वयोवृद्ध व्यक्तियों पर द्वितीय विश्व सभा 2002

वयोवृद्ध व्यक्तियों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की बीसवीं वर्षगांठ के अवसर पर द्वितीय विश्व सभा का आयोजन वर्ष 2002 में मैड्रिक में किया गया। सभा में अन्तर्राष्ट्रीय कार्य योजना और राजनैतिक घोषणा अंगीकृत किये गये जिसमें वयोवृद्ध व्यक्तियों के विकास से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला गया। कार्य योजना के अन्तर्गत वयोवृद्ध व्यक्तियों के लिये तीन प्राथमिकता उल्लिखित की गयी। वयोवृद्ध व्यक्ति और विकास, वयोवृद्ध व्यक्ति और स्वास्थ्य तथा वयोवृद्ध व्यक्ति और उनके

सहायक पर्यावरण, जिसमें समाज में उनके योगदान के प्रति जागरूकता पैदा करना तथा उनके जीवन स्तर को उच्चतर बनाना आदि बातें उल्लिखित हैं। कार्य योजना के आखिरी भाग में इस बात के लिये जोर दिया गया है कि कार्य योजना में लिखित प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये सभी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय उपायों को अपनाया जाना चाहिये।

वृद्धों के लिये कार्यक्रम एवं सरकारी नीति

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव के अनुसार भारत में सामाजिक न्याय मंत्रालय द्वारा नवम्बर, 1992 में वृद्ध लोगों को सहायता देने का एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया गया। इसके अन्तर्गत वृद्धावस्था गृह स्थापित करने वाले, वृद्धजनों को सुबिधाएं प्रदान करने वाले तथा वृद्धों के लिये सचल चिकित्सालय चलाने वाले ऐच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता देना आरम्भ की गयी। सन् 1998–99 में इस कार्यक्रम का नाम **'वृद्ध लोगों का समन्वित कार्यक्रम'** कर दिया गया। इसके अनुसार वृद्ध लोगों को दी जाने वाली सभी तरह की सेवाओं के लिये ऐच्छिक संगठनों के व्यय का 90 प्रतिशत भाग सरकार वहन करती है जबकि 10 प्रतिशत हिस्सा ऐच्छिक संगठनों को अपने द्वारा जुटाना होता है। यदि वृद्धों को दी जाने वाली सुविधाएँ नेहरू युवा केन्द्र अथवा महाविद्यालयों में राष्ट्रीय सेवा योजना (एन.एस.एस.) द्वारा संचालित होती है तो उनका पूरा व्यय सरकार द्वारा उठाया जाता है। सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मन्त्रालय के द्वारा स्वयं भी इस तरह के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिसमें वृद्धजनों के प्रति समाज में जागरूकता उत्पन्न हो सके तथा वृद्धों की सहायता के लिये सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया जा सके। इस समय इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 736 वृद्धावस्था गृह, वृद्धजन देखरेख केन्द्र तथा सचल चिकित्सालय स्थापित किये जा चुके हैं। वर्तमान में वृद्धजनों के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों को भागों में विभाजित करके समझा जा सकता है:–

1. वृद्धावस्था गृह
2. वृद्धजन देखरेख केन्द्र

3. सचल चिकित्सकीय सेवाएँ
4. गैर संस्थात्मक सेवाएँ
5. अन्य सुविधाएँ

सरकार तथा अनेक दूसरी संस्थाओं द्वारा वृद्धजनों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ देने के लिये व्यापक प्रयत्न किये गये है:

(i) सर्वप्रथम अब लगभग सभी राज्य सरकारों द्वारा बेसहारा वृद्धजनों के लिये वृद्धावस्था पेन्शन योजना आरम्भ की गई है, इसके अन्तर्गत विभिन्न राज्यों में 75 रूपये मासिक से लेकर 300 रूपये मासिक तक पेन्शन दी जाती है, जिससे वृद्ध लोग अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

(ii) अन्नपूर्णा योजना के अन्तर्गत नगरों और गाँवों में निराश्रित वृद्धों को प्रतिमाह 10 किलो अनाज दिया जाता है। यह सुविधा उन्हीं वृद्धों को मिलती है जिन्हें वृद्धावस्था पेन्शन का लाभ न मिलता हो।

(iii) सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा 60 वर्ष से अधिक के वृद्धों को 0.75 प्रतिशत अधिक ब्याज दिया जाता है जिससे ब्याज से आय प्राप्त करने वाले वृद्धों को किसी तरह की असुविधा न हो।

(iv) जिन वृद्धों की आयु 65 वर्ष या उससे अधिक है, उन्हें आयकर में विशेष छूट दी जाती है।

(v) भारतीय रेलवे द्वारा भी 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के वृद्धों को रेल किराये में 25 प्रतिशत छूट देने का प्रावधान है।

(vi) देश के सभी डाकघरों में अगस्त, 2004 से सीनियर सिटीजन स्कीम नाम से नयी योजना लागू की गई है जिसके द्वारा 60 वर्ष से अधिक के लोगों की जमा राशि पर 9 प्रतिशत ब्याज दिया जाता है। यह अन्य लोगों को मिलने वाले ब्याज से एक प्रतिशत अधिक है।

जनवरी, 1999 से वृद्धजनों के लिये एक राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई। इसका उद्देश्य परिवारों को बुजुर्ग सदस्यों की देखभाल करने का प्रोत्साहन देना, स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा वृद्ध लोगों की देखभाल और

संरक्षण के प्रयत्न करना तथा बुजुर्गो में आत्मनिर्भर बनने की जागरूकता पैदा करना है।

उपरोक्त के अतिरिक्त अनेकों सामाजिक नीतियाँ, कार्यक्रम, अधिनियम वृद्धों के अधिकारों के संरक्षण के भारत सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये हैं, जिनके प्रयोग के माध्यम से हम वृद्ध रुपी अनुभवों के खजानों का समाज और राष्ट्र के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

- *भट्टाचार्य, बी.एन. (1982) वृद्धों के प्रति दृष्टिकोण, समाज कल्याण पत्रिका केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड नई दिल्ली, अंक अगस्त 1982*
- *सिंह, ए. एन. (1990) सामुदायिक संगठन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।*
- *मिश्रा, पी. डी. (1992) व्यक्ति और समाज, उ. प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ*
- *सिलावट, सुधा, एस0 (1994), वृद्धावस्था की समस्यायें सामाजिक सहयोग त्रैमासिक शोध पत्रिका वर्ष– 4 अंक 14 श्री कृष्ण शोध संस्थान उज्जैन (म0प्र0)*
- *आहूजा, राम (1995) सामाजिक समस्याऐं, साहित्य भवन प्रकाशन नई दिल्ली*
- *दाभाड़े, सुरभि (1997), शिक्षित सेवानिवृत्त महिलाएं एक अध्ययन, समाज विज्ञान, संकाय वार्षिक पत्रिका औरंगाबाद विश्वविद्यालय औरंगाबाद*
- *सिंह, सुरेन्द्र एवं मिश्र, पी.डी. (1998) समाज कार्य इतिहास, दर्शन, एवं प्रणालिया, न्यू रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ*
- *सचदेवा, आर.डी. (2000) भारतीय प्रशासन एव समाज कल्याण, पुस्तक महल, आगरा*
- *योजना, सितम्बर 2000, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली*
- *योजना, सितम्बर 2000, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली*
- *बोस, अटल बिहारी (2006), पुराने के लिए सामाजिक सुरक्षा, अवधारणा प्रकाशन हाउस, नई दिल्ली।*
- *भारती अनूप कुमार (2008), भारत में वृद्ध हेतु नीतियाँ और कार्यक्रम जर्नल सामाजिक कल्याण।*
- *कुरुक्षेत्र, मई 2009, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली*
- *कुरुक्षेत्र, मई 2009, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली*

SUSTAINABLE DEVELOPMENT : NEED OF THE HOUR

Dr. Anil Kumar Srivastava*

Abstract

Sustainable development is an extremely urgent and universal concern. The challenges of sustainable development or transformation is absolutely complex. Sustainability is often thought of as a long-term goal, i.e., a more sustainable world. Becoming sustainable doesn't happen overnight. That it takes many smaller steps, sometimes challenging and some into the unknown, to really take sustainability to the next level and beyond. Sustainable development refers to the many processes and pathways to achieve it (e.g. sustainable agriculture and forestry, sustainable production and consumption, good government, research and technology transfer, education and training, etc.). The concept of sustainable development was described by the 1987 Bruntland Commission Report as "development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs." This paper discusses and analyses conceptually, 'Sustainable development as need of hour', with the help of secondary sources of literature.

Introduction

Sustainable development is a pattern of resource use that aims to meet human needs while preserving the environment so that these needs can be met not only in the present, but in indefinite future. Sustainable development ties together concern for the carrying capacity of natural systems with the social challenges facing humanity. As early as the 1970s "sustainability" was employed to describe an economy "in equilibrium with basic

* *Associate Professor, Department of Sociology, J.N.M.P.G. College, Barabanki.*

ecological support systems". Ecologist have pointed to the "limits of growth" and presented the alternative of a "steady state economy" in order to address environmental concerns. Sustainable development does not focus only on environmental issues. The UN 2005 World Summit Outcome Document refers to the "interdependent and mutually reinforcing pillars" of sustainable development as economic development, social development and environmental protection.

The concept of sustainable development is based on the assumption that societies need to manage economic, social, and natural capital, which may be non-substitutable and whose consumption might be irreversible. Natural capital can not necessarily be substituted by economic capital. While it is possible that we can find ways to replace some natural resources, it is much more unlikely that they will ever be able to replace eco-system services, such as the protection provided by the ozone layer, or the climate stabilizing function of the forests. In fact natural capital, social capital and economic capital are often complementarities. A further obstacle to substitutability lies also in the multi-functionality of many natural resources. Just like Forests not only provide the raw material for paper but they also maintain biodiversity, regulate water flow, and absorb CO^2.

There are six interdependent capacities, are deemed to be necessary for the successful pursuit of sustainable development. These are the capacities to measure progress towards sustainable development; promote equity within and between generations; adapt to shocks and surprises; transform the system onto more sustainable development pathways; link knowledge with action for sustainability; and to devise governance arrangements that allow people to work together in the exercising of the other capacities.

Sustainable development has three spheres, dimensions, domains or pillars: the environment, the economy and society. The three-sphere framework has also been worded as "economic,

environmental and social" or "ecology, economy and equity". It was expanded later on to include a fourth pillar of culture, institutions or governance or alternatively reconfigured as four domains of the social - ecology, economics, politics and culture, thus bringing economics back inside the social and treating ecology as the intersection of the social and the natural. All these four dimensions to sustainable development (society, environment, culture and economy) are intertwined and not separate. Sustainability is a paradigm for thinking about the future in which environmental, societal and economic considerations are balanced in the pursuit of an improved quality of life. For example, a healthy environment to provide food and resources, safe drinking water and clean air for its citizens is required for a prosperous society. A 2013 study concluded that sustainability reporting should be reframed through the lens of four interconnected domains: ecology, economics, politics and culture.

The concept of Cultural, fourth pillar of sustainable development, has been elaborated in The Universal declaration on Cultural Diversity (UNESCO 2001) by stating that "….cultural diversity is as necessary for humankind as bio-diversity is for nature", it becomes "one of the roots of development understood not simply in terms of economic growth, but also as a means to achieve a more satisfactory intellectual, emotional, moral and spiritual existence.

The action plan Agenda 21 for sustainable development identified information, integration and participation as key building blocks. It will help countries to achieve development that recognizes these interdependent pillars. It emphasises that everyone is a user and provider of information in sustainable development. It stresses the need to adopt new approaches of doing business that involve cross-sectoral co-ordination and the integration of environmental and social concerns into all development processes. Furthermore, Agenda 21 emphasises that broad public participation in decision

making is a fundamental prerequisite for achieving sustainable development.

Process of Environmental sustainability is the process of making sure current processes of interaction with the environment are pursued with the idea of keeping the environment as pristine as naturally as possible based on ideal seeking behavior. An unsustainable situation occurs when the sum total of nature's resources is used faster than it can be replenished. Sustainability requires that human activity only uses nature's resources at a rate at which it they can be replenished naturally. Inherently the concept of sustainable development is interwined with the concept of carrying capacity. Theoretically, the long term result of environmental degradation is the inability to sustain human life. Such degradation on a global scale could imply extinction of humanity.

Sustainability is a process, which involves development of all aspects of human life affecting sustenance. It means resolving the conflict between the various competing goals, and involves the simultaneous pursuit of economic prosperity, environmental quality and social equity famously known as three dimension (triple bottom line) with resultant vector being technology. Hence it is continually evolving process. The process of achieving sustainability is only a means of getting to the desired future state. However, the destination of sustainability is not a fixed place, instead it is a set of wishful characteristics of a future system.

History

Sustainable development is the overarching paradigm of the United Nations. One of the first references to Sustainable development as a global priority was included in world conservation strategy published the International Union for Conservation of Nature, in 1980. It included and introduced the term "sustainable development". Two years later, the United Nations World Charter

for Nature raised five principles of conservation by which human conduct affecting nature is to be guided and judged. In 1987, the United Nations World Commission on Environment and Development released the report Our Common Future, commonly called the Brundtland Report which included one of the most widely recognized definitions of sustainable development.

Sustainable development is development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs. It contains within it two key concepts:

(i) The concept of 'needs', in particular, the essential needs of the world's poor, to which overriding priority should be given; and

(ii) The idea of limitations imposed by the state of technology and social organization on the environment's ability to meet present and future needs.

Since the Brundtland Report, the concept of sustainable development has focussed more on the goal of "socially inclusive and environmentally sustainable economic growth". It has been developed beyond the initial inter-generational framework.? In 1992, the Earth Charter, published by UN Conference on Environment and Development, outlines the building of a just, sustainable, and peaceful global society in the 21st century.

The Millennium Declaration, under the principles of the United Nations Charter, identified principles and treaties on sustainable development. It included economic development, social development and environmental protection. Sustainable development is a systems approach to growth and development and to manage natural, produced, and social capital for the welfare of their own and future generations. The United Nations used the term sustainable development incorporating both issues associated with land development and broader issues of human development such as education, public health, and standard of living.

The UN Division for Sustainable development lists the following areas as coming within the scope of sustainable development : Agriculture, Atmosphere, Biodiversity, Biotechnology, Capacity building, Climate change, Consumption and Production patterns, Demographics, Desertification and Drought, Disaster reduction and Management, Education and Awareness, Energy, Systems ecology, Finance, Forests, Fresh water, Health, Human settlements, Indicators, Industry, Information for Decision making and Participation, Integrated Decision making, International Law, International Cooperation for Enabling Environment, Institutional arrangements, Land Management, Major Groups, Mountains, National Sustainable Development strategies, Oceans and Seas, Poverty Sanitation, Science, SIDS, Sustainable tourism, Technology, Toxic chemicals, Trade and Environment, Transport, Waste (Hazardous), Waste (Radioactive), Waste (Solid) and Water.

Sustainable Development Goals

The Sustainable Development Goals were developed in the Post-2015 Development Agenda as the future global development framework to succeed the Millennium Development Goals which ended in 2015. The Sustainable Development Goals or Global Goals are a shared blueprint for peace and prosperity for people and the planet, now and into the future. The SDGs were set up in 2015 by the United Nations General Assembly. They are included in a UN General Assembly Resolution called the 2030 Agenda or popularly known as Agenda 2030. All United Nations Member States in 2015 adopted "The 2030 Agenda for Sustainable Development". At its heart are the 17 Sustainable Development Goals (SDGs). A collection of 17 interlinked global goals designed to be a "blueprint to achieve a better and more sustainable future for all". These are an urgent call for action by all countries - developed and developing - in a global partnership. They recognize that ending poverty and other deprivations must go hand-in-hand

with strategies that improve health and education, reduce inequality, and spur economic growth - all while tackling climate change and working to preserve our oceans and forests.SDG are intended to be achieved by the year 2030. The SDGs build on decades of work by countries and the UN, including the UN Department of Economic and Social Affairs.

- **Earth Summit :** In June 1992, at the Earth Summit in Rio de Janeiro, Brazil, more than 178 countries adopted Agenda 21, a comprehensive plan of action to build a global partnership for sustainable development to improve human lives and protect the environment.
- **Millennium Summit :** UN Member States unanimously adopted the Millennium Declaration at the Millennium Summit in September 2000 at UN Headquarters in New York. The Summit led to the elaboration of eight Millennium Development Goals (MDGs) to reduce extreme poverty by 2015.
- **World Summit on Sustainable Development :** The Johannesburg Declaration on Sustainable Development and the Plan of Implementation, adopted at the World Summit on Sustainable Development in South Africa in 2002, reaffirmed the global community's commitments to poverty eradication and the environment, and built on Agenda 21 and the Millennium Declaration by including more emphasis on multilateral partnerships.
- **United Nations Conference on Sustainable Development (Rio+20) :** In June 2012, at the United Nations Conference on Sustainable Development (Rio+20) in Rio de Janeiro, Brazil, Member States adopted the outcome document "The Future We Want" in which they decided, inter alia, to launch a process to develop a set of SDGs to build upon the MDGs and to establish the UN High-level Political Forum on Sustainable Development. The Rio +20 outcome also

contained other measures for implementing sustainable development, including mandates for future programmes of work in development financing, small island developing states and more.

- In 2013, the General Assembly set up a 30-member Open Working Group to develop a proposal on the SDGs. In January 2015, the General Assembly began the negotiation process on the post-2015 development agenda.
- **UN Sustainable Development Summit :** In September 2015 UN Sustainable Development Summit in New York, adopted the 2030 Agenda for Sustainable Development, with 17 SDGs at its core .
- 2015 was a landmark year for multilateralism and international policy shaping, with the adoption of several major agreements:
  - Sendai Framework for Disaster Risk Reduction (March 2015)
  - Addis Ababa Action Agenda on Financing for Development (July 2015)
  - Paris Agreement on Climate Change (December 2015)

  The annual High-level Political Forum on Sustainable Development serves as the central UN platform for the follow-up and review of the SDGs.

The UN 17 Sustainable Development Goals (SDGs)

- Goal 1. - End poverty in all its forms everywhere.
- Goal 2. - End hunger, achieve food security and improved nutrition and promote sustainable agriculture.
- Goal 3. - Ensure healthy lives and promote well-being for all at all ages.
- Goal 4. - Ensure inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for all.
- Goal 5. - Achieve gender equality and empower all women and girls.

- Goal 6. - Ensure availability and sustainable management of water and sanitation for all.
- Goal 7. - Ensure access to affordable, reliable, sustainable and modern energy for all.
- Goal 8. - Promote sustained, inclusive and sustainable economic growth, full and productive employment and decent work for all.
- Goal 9. - Build resilient infrastructure, promote inclusive and sustainable industrialization and foster innovation.
- Goal 10. - Reduce inequality within and among countries.
- Goal 11. - Make cities and human settlements inclusive, safe, resilient and sustainable.
- Goal 12. - Ensure sustainable consumption and production patterns.
- Goal 13. - Take urgent action to combat climate change and its impacts (Acknowledging that the United Nations Framework Convention on Climate Change is the primary international, intergovernmental forum for negotiating the global response to climate change.)
- Goal 14. - Conserve and sustainably use the oceans, seas and marine resources for sustainable development.
- Goal 15. - Protect, restore and promote sustainable use of terrestrial ecosystems, sustainably manage forests, combat desertification, and halt and reverse land degradation and halt biodiversity loss.
- Goal 16. - Promote peaceful and inclusive societies for sustainable development, provide access to justice for all and build effective, accountable and inclusive institutions at all levels.
- Goal 17. - Strengthen the means of implementation and revitalize the global partnership for sustainable development.

Sustainable development is an eclectic concept, as a wide array of views fall under its umbrella. The concept has included notions of weak sustainability, strong sustainability and deep ecology. Different conceptions reveal strong tension between ecocentrism and anthropocentrism. Sustainable development is said to set limits on developing world. While current developed countries polluted significantly during their development, the same countries encourage developing countries to reduce pollution, which sometimes impede growth. Some believe that the implementation of sustainable development would mean reversion of pre-modern lifestyles. We can no longer put off our efforts to fight the climate crisis. It is time to act is now. It is time to keep balancing the need to keep business in motion while making changes to reach our sustainability ambitions. There are tough realities but it has to be realized.

References

- *Hardin, Garrett (1968).: "The Tragedy of the Commons". Science. 162 (3859): 1243-1248.*
- *Meadows, D.H., D.L. Meadows, J. Randers, and W.W. Behrens III. (1972) : The Limits to Growth. Universe Books, New York.*
- *"A Blueprint for Survival".: The New York Times. 5 February 1972.*
- *Stivers,R. (1976): The Sustainable Society: Ethics and Economic Growth. Philadelphia: Westminster Press.*
- *The International Union for Conservation of Nature,1980,*
- *World Commission on Environment and Development (1987) : Our Common Future, Oxford University Press.*
- *Brundtland Commission (1987). "Report of the World Commission on Environment and Development". United Nations.*
- *Barbier, E. (1987).: "The Concept of Sustainable Economic Development". Environmental Conservation. 14 (2): 101-110.*
- *Basiago, Andrew D. (1995): "Methods of defining 'sustainability'". Sustainable Development. 3 (3): 109-119.*
- *Herman E. Daly : Beyond Growth: The Economics of Sustainable Development , Beacon Press,1996.*
- *Barry Dalal-Clayton , Stephen Bass : Sustainable Development Strategies: A Resource Book, Routledge, 2002.*
- *Jennifer A. Elliott and Peter P Rogers 2007: An Introduction to Sustainable Development, ? Routledge;*

- *Dasgupta, P. (2007). "The idea of sustainable development". Sustainability Science. 2 (1): 5-11.*
- *Tracey Strange, Bayley Anne : Sustainable development - Linking Economy, Society, Environment, OECD Publishing, 2008*
- *Finn, Donovan (2009): Our Uncertain Future: Can Good Planning Create Sustainable Communities?. Champaign-Urbana: University of Illinois.*
- *APJ Abdul Kalam , Srijan Pal Singh : Target 3 Billion: Innovative Solutions Towards Sustainable Development, Penguin India,16 December 2011*
- *Weakland, Joseph. P., Roorda Niko, Corcoran, Peter Blaze,: Fundamentals of Sustainable Development, Routledge. 2012.*
- *Fulekar M.H. (ed.), Bhawana Pathak (ed.), Kale, R. K. (ed.): Environment and Sustainable Development, Springer Nature, 2013.*
- *Atkinson, Giles (ed,) Simon Dietz, Neumayer, Eric and Agarwala, Matthew : Handbook of Sustainable Development, Elgar. 2014*
- *IPCC Fifth Assessment Report (2014).: "Climate Change 2014: Impacts, Adaptation and Vulnerability" (PDF). Geneva (Switzerland): IPCC.*
- *United Nations (2014): Prototype Global Sustainable Development Report (Online unedited ed.). New York: United Nations Department of Economic and Social Affairs, Division for Sustainable Development.*
- *Blewitt, John (2015). : Understanding Sustainable Development (2nd ed.). London: Routledge.*
- *"Sustainable Development". UNESCO. 3 August 2015.*
- *United Nations (2015) Resolution adopted by the General Assembly on 25 September 2015, Transforming our world: the 2030 Agenda for Sustainable Development.*
- *Sachs, Jeffrey D. (2015): The Age of Sustainable Development. New York: Columbia University Press.*
- *https://en.wikipedia.org/wiki/Sustainable_development*
- *https://sdgs.un.org/goals*
- *https://sdgs.un.org/2030agenda*
- *https://www.globalgoals.org/*
- *Daly, H. E. : Economics, Ecology, Ethics: Essays toward a Steady-State Economy. Hardin, G. "The tragedy of the commons". New York and San Francisco: W. H. Freeman and Company. pp. 100-114.*

OF RELIGIOUS PLACES

Dr. Ram Shankar Yadav*

Born and brought up in a backward family at a small village of Ayodhya, I enjoyed wildlife with my silly friends. My Parents, like most of others were not concerned about my career. But they focused on good health. Education did not mean more than going to school with a mind to keep me off wells, fire, and doing acts of mischief. I had nothing to boast of save my parental religiously as almost every member of my large family, in his or her fifties, was a vegetarian and licensee Ram Bhakta connected with Maniram Chhawani, Ayodhya. My mother also was a licensee Bhakta and visited Hanuman Garhi and would take baths in the Saryu with a good number of village-women. They were of the opinion that such visits would help them making their next life prosperous and satisfactory. To accompany her to Ayodhya, for me, was not less exciting than going to a movie for modern children.

Having taken the examination of High school, I went to the religious town with three cousins of my own family. We got the blessing of the Saryu and reached the Hanuman Garhi very hurriedly, purchased desighee laddus, put them in green donas and marched towards Hanuman Ji. People were thronging upon one another with their stretched hands full of ladduss to place donas exactly in the mouth of Hanuman Swami which was almost impossible for common devotes. However, a few, huge-belied Mahajans were allowed as they offered heavy cash amount also in the name of Dakchhina. I noticed a priest thereat who was around 30 years. Some old men and women, who were unable to grapple with the crowd, threw their laddus aiming at the right point of the statue but the act irritated the priest as some laddus fell on his hands and he scolded them badly. On such a second occurrence, he abused like a vulgar man. I began to ponder over faith and

* *Asso.Professor, Department of English, J.N.M.P.G.College, Barabanki.*

reality. I drew may hand back with laddus and looked around. I found that with in no time, I was surrounded by a band of monkeys. I offered all the laddus to them in place of throwing to the statue. As long as I was there, observed the young priest and found that he preferred cash to laddus and young female visitors to old pilgrims.

Seeing all the activities over there, my long-cherished faith in the Temple was shaken. During my graduation, I visited the Temple several times only with a little amount of my own or very often, with my fellow students with a plan to get more laddus at less payment which was easily possible there from. To my great surprise, I happened to see some notorious criminals and vicious people who looked fully relaxed after offering laddus and cash in the Temple. More than this, as far as I know, nothing happened so as to make them realize their crimes.

Gradually, I lost faith in such types of activities. Kali-worship and annual religious feast at my village made me serious. All the villagers collected wheet-grains from every family in the name of Chanda for Kali Mata. In this ritual, only Brahmins were invited to eat puris and all that was left after their goubling upto mouth, was called 'Prasad'. Young ones of the Brahmins were given three to five puris as the Prasad whereas non-Brahmins children of the village were given only some scraps. While doing my Post Graduation, I managed a change by making a separate practice of worship without Brahmins and it was liked by all the farmer families and labours.

Despite my best possible endours, my upbringing did not allow me to become an Atheist. In Nineteen nineties, I had to go to Allahabad several times, I heard people talking of a temple situated in the civil lines area of the city.

However, after a long period I thought of visiting the temple with restored faith. I went to the temple around the sunset. Fortunately, it was a Tuesday. I was very surprisingly glad to know that cash payment as charity was not acceptable in the temple. I

entered the premisis and found that almost two dosens of college boys and girls were talking about their friendships and entertaining themselves with one another, escaping their parents' eyes. On the other side, some government employees were bargaining with their own clients. It was a safe place for accepting hushed money. In the left corner of the temple, there were three or four sweet-shops full of laddus and pedas which were claimed to be prepared with desighee and consequently costed almost five times more than market rates. At last, I came to know that the shops were run indirectly by the Mahantha himself. No body was constrained to purchase sweets for offerings but at the same time, none was allowed to enter with sweets from outside-shops or even home-made ones.

During the Arti session, devotees assembled with donas full of laddus or pedas which were accepted and one may say, deposited in the Garbha Griha. Young students, lovers-beloveds, office employees with their clients attended the Arti very late and reluctantly. Exchange offers were freely done.

There was nothing unexpected at the site for me. But the little faith regarding temples, was ultimately, shattered to pieces. It was the last test of my own regarding religious places and thence, I could not go to such places in search of any divine quest, blessings or the like. My personal experiences, though a little, made me confident, no matter, what the people think about my approaches.

The visits of religious places bring me to the conclusion that "Religion is not for empty bellies." It becomes well only to well-to-do ones and exploits average people. For intellectuals, if they are, in real sense, "in the matters of conscience, the Law of majority has no place."

References

- *Bhabani Bhattacharya: So many Hungers.*
- *M.K.Gandhi*